भूमिका

भारतीय कला संस्कृति का लोकनाट्य यह एक अविभाज्य अंग है जो पुरातन समय से ही भारत की मूल तत्वों का प्रदर्शन प्रस्तुति के माध्यम से कर रहा है। भारतीय कला अपनी प्राचीनता तथा विवधता के लिए विख्यात रही है। आज जिस रूप में 'कला' शब्द अत्यन्त व्यापक और बहुअर्थी हो गया है, प्राचीन काल में उतना विकसित न था। यदि ऐतिहासिक काल को छोड़ और पीछे प्रागैतिहासिक काल पर दृष्टि डाली जाए तो विभिन्न नदियों की घाटियों में पुरातत्त्वविदों को खुदाई में मिले असंख्य पाषाण उपकरण भारत के आदि मनुष्यों की कलात्मक प्रवृत्तियों के साक्षात प्रमाण हैं। लोक नाट्य वास्तव में जनसाधारण की अभिव्यक्ति का एक सक्तिशाली साधन और मनोरंजन से साथ ही जनजागृति का माध्यम रहा है। भारत में ऐसे लोकनाट्यों की परंपरा अबाधित चलती आ रही है और चलती रहेगी इसमें कोई संदेह नहीं है। मनुष्य समाज के मनुषत्व को मूर्त रूप देने का कार्य इन लोकनाट्यों की माध्यम से ही होता है। महाराष्ट्र में विदर्भ का खड़ीगंमत उसी परंपर का एक अंग है।

खड़ी गंमत ने आज के आधुनिकीकरण में भी अपना अस्तित्व कायम रखा है साथ ही कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ अपने उद्देश्य को भी सिद्ध कर रहा है। जन साधारण के जीवन में किए गए अमूर्त बदलाओं का दायित्व अपने कंधे पर लिए यह आज भी विदर्भ का प्रतिनिधित्व कर रही है।इस लोक नाट्य ने भारत में प्रचलित लोकनाट्य की परंपरा को आगे बढ़ाते हुये विदर्भ की लोक नाट्य परंपरा अबाधित रखा है।

खड़ी गंमत ये वह लोकनाट्य है, जो समाज जनजागरण का हित साथ लेकर चल रही है। और जनसामान्य जीवन में हो रहे बदलाव यह इसका एक सुंदर उदाहरण है। घर में बुजुर्गों द्वारा होती वार्तालाप से बचपन से ही इस लोकनाट्य के बारें में एक उत्कंठ मनीषा रही है, जो आज भी वैसी ही है और यही कारण भी है की आज इस विषय के संदर्भ में कुछ लिखने का अवसर मिला है।

इस लघु शोध प्रबंध में खड़ी गंमत का विचार भारतीय लोकनाट्य की तुलना में किया गया है। भारत का पिछड़ा समझे जाने वाला विदर्भ प्रांत भले ही राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से मुख्य धारा में ना

हो पर संस्कृति प्रवाह में ये वही योगदान दे रहा है, जो भारत के अन्य लोकनाट्य परंपरा को आगे बढ़ाने का काम कर रहा है।

पहले अध्याय में इन्ही बातों की तुलना की गई है। भारत के कुछ प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण लोकनाट्यों की पहचान और उसी के साथ खड़ी गंमत का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। और यह लोकनाट्य भी एक महत्व पूर्ण अंग है, ये साबित करने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिए सबसे पहले विद्वानों द्वारा दी गयी कुछ परिभाषाएँ आर उनका विश्लेषण कर लोकनाट्य के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

जावे त्यांच्या वंशी, तेंव्हा कळे !

अर्थात किसी व्यक्ती,विचार,या शैली को समझने पूर्व हमें उसके वंश का होकर सोचना पड़ता है,स्वयं वह व्यक्ति बनकर सोचना होता है। खड़ी गंमत विदर्भ की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्टभूमि को उजागर करती है। लोकनाट्यों में पात्रों द्वारा अभिनय इतना सहज होता है की पात्र मंच के साथ ही दर्शकावकाश में भी उपस्थित होता है और दर्शकों को भी अभिव्यक्त करता है।

आकृतिबंध अभिनय का आग्रह करता हमारा आज के आधुनिक नाटक, प्रस्तुति के समय पीटर ब्रुक के डेडली थिएटर को साकार करता नजर आता है वही हमारा लोकरंगमंच सहजभियानी से उपस्थित हर दर्शक के अंतरात्मा में सीधा प्रवेश कर जाता है। खड़ी गंमत के अभिनय से लेकर सवादों तक और संवादों से लेकर प्रत्येक नाट्यांग में ऊर्जा उपस्थित होती है। उसी के साथ एक और विशेषता है कि बिना किसी नुकसान के आसनी से उपलब्ध होने वाले वस्त्र या वाद्यों के साथ आसानी से मिलने वाली किसी खाली जगह पर इस कि प्रस्तुति की जा सकती है।

खड़ी गंमत यह लोकनाट्य आज समसमायिक प्रश्नों को प्रस्तुत कर अपनी प्रायोगिकता स्पष्ट करता है। एक साधारण कलाकार जब प्रस्तुति में भगवान कृष्ण बन जाता है तो समूचा दर्शक वर्ग भी उसे कृष्ण के रूप में ही स्वीकार करता है, जिस साधारणीकरण की बात हमारे शास्त्र करते हैं वह यहाँ सपष्ट परिलक्षित होता है।

लोक वार्ता का अंग रहने वाला लोकनाट्य और उसके दो मुख्य भेद है -

1) प्रहसनात्मक 2) नृत्य नाट्यात्मक इनकी सहायता से खड़ी गंमत और लोकनाट्य परंपरा की तुलना करने का प्रयास किया गया है।

इसी अध्याय के दूसरे प्रकरण में भारतीय लोकनाट्य का उदभव और संस्कृत नाट्य परंपरा के बाद हुए बदलाओं कि प्रक्रिया में उत्पन्न प्रादेशिक बोलियों और लोकाचार ने किस प्रकार अपने अभिव्यक्ति के माध्यम ढूंढ लिये यह भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

दूसरे उप-प्रकरण में नौटंकी (उत्तर प्रदेश),भवाई (गुजरात),अंकीया नाट (आसाम),कुडियाट्टम,यक्षगान (कर्नाटक),माच (मध्य प्रदेश),तमाशा (महाराष्ट्र), के परिचय के साथ और साथ खड़ी गंमत के साम्यों का अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। महाराष्ट्र के लोकनाट्य और उनकी विशेषताओं का भी उल्लेख इस अध्याय में किया गया है।

अगले अध्याय में महाराष्ट्र की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और साथ ही विदर्भ के लोकनाट्य खड़ी गंमत का उदय और विकास स्पष्ट करने के लिए विदर्भ कि सांस्कृतिक पृष्टभूमि पुरातन लोककलाएं,साथ ही कुछ मुख्य नाट्य प्रकार, विधि नाट्य,मनोरंजनात्मक प्रकार इन सब बिन्दुओं से खड़ी गंमत के उदय को प्रस्तुत किया गया है। शाहीर और तमाशा यह आज महाराष्ट्र के लोकनाट्य की पहचान बन गए है वास्तव में इसी खड़ी गंमत से उत्पन्न हुये है बात को स्पष्ट करने के लिए कन्नू –नन्नू इन पुराने शाहिरों ने कही हुई कहानी भी प्रस्तुत कि गयी है।

अगले अध्याय में खड़ी गंमत के कृतित्व पक्ष को रखा गया है, जिसमें उसकी विषयों और रचनाओं के माध्यम से खड़ी गंमत कि प्रस्तुति के अंग को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत किए जाने वाले विषयों को तीन भागों में बांटा गया है । 1) पौराणिक एवं आख्यान मूलक2) ऐतिहासिक एवं वीरकथात्मक 3) हास्य परक तथा मनोरंजनात्मक इन तीन भागों में विभाजित कर खड़ी गंमत में उठाए जाने वाले ऐतिहासिक विषयों से लेकर आज तक के उठाए जाने वाले समसामायिक प्रश्नों और उसके मंचन पर विस्तार से चर्चा की गयी है। मनोरंजन के साथ ही जंजागृति में अपनी भूमिका संभाल ने वाले इस नाट्य के योगदान का महत्व प्रस्तुत किया गया है।

अगले अध्याय में उसके प्रस्तुति पक्ष को उजागर किया गया है। रंगशाला से लेकर मंडली प्रबंधन और गुरु परंपरा से लेकर दर्शक वर्ग का महत्व और साथ ही उनका इस कला के प्रति लगाव भी समझने

का प्रयास किया गया है। आखरी में किस प्रकार खड़ी गंमत लोक प्रबोधन कर लोगों में एक विश्वास, और जीने कि उम्मीद निर्माण कर रहा है यह एक उदाहरण प्रस्तुत कर स्पष्ट किया गया है।

विदर्भ का ये खड़ी गंमत झाड़ीपट्टी तक सीमित होता नज़र आ रहा है। झाड़ीपट्टी का मतलब विदर्भ के उस अंचल से है जो चन्द्रपुर, भंडारा, गोंदिया, गडचिरोली से है, जो इस नाम से पहचाना जाता है। यह लोकनाट्य वर्तमान में आधुनिकता के दायरे में अपने अस्तित्व बचाने का पर्यास कर रहा है। मराठी लेखन संस्कृति ने भी उसे कभी उचित स्थान नहीं दिया। परिचय स्वरूप में ही उसे आज तक लिखा गया है। डॉ. वाकोड़े, डॉ. हरिशचन्द्र बोरकर,हीरामन लांजे और प्रा.मनोज उज्जेंकर जैसे कला प्रेमियों ने इसे लेखन में स्थान देकर इसके महत्व को समझा है। खड़ी गम्मत की प्रस्तुति का जसधारण पर होता प्रभाव स्पष्ट करना इस शोध मुख्य उद्देश्य है।

प्रस्तुत शोध में प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है साथ ही प्रस्तुत शोध में क्षेत्र सर्वेक्षण,साक्षात्कार तथा प्रश्नावली विधि का भी सहारा लिया गया है।

जीवन भर कष्ट झेल मुझे पढाया लिखाया उन माता- पिता के चरणों में मेरे जीवन का यह पहला ग्रंथ अर्पित !

किसी भी शोध कार्य में मार्गदर्शक तथा गुरु का स्थान सर्वोपरि है। मुझे अपने मार्गदर्शक तथा श्रद्धेय गुरु डॉ सतीश पावड़े का स्नेह,और विषय के व्यतिरिक्त मिलने वाला ज्ञान केवल शैक्षणिक जीवन में नहीं तो सम्पूर्ण जीवन में प्रेरणा दायी रहेगा। ऐसे गुरु के विशेष आभार।

आखिर में इस शोध कार्य में प्रोत्साहित करने वाले सभी गुरुओं का प्रो.ओमप्रकाश भारती तथा प्रो.विधु खरे विभागाध्यक्ष प्रो.सुरेश शर्मा जी को आभार।

अंत में सभी मित्र परिवार रवि मुंढे, कुमार गौरव मिश्रा,मनीष कुमार,अमरेन्द्र सिंह तथा अन्य सभी मित्रों का आभार व्यक्त करता हूँ जिनके साथ ने इस शोध को पूर्ण करने में योगदान दिया।

उसी के साथ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय को साभार जिसने इस शोध पर कार्य करने का अवसर तथा अनुकूल वातावरण प्रदान किया।

लोकनाट्यों उदयऔर विकास:-

लोकनाट्यों की जो एक विशाल परम्परा भारत में दिखाई देती हैं वह वास्तव में पुरातन भारतीय समाज का अंग हैं जो किसी विशेष लोगों द्वारा नष्ट किया गया था या करने का प्रयत्न था। मानव द्वारा मानव पर वर्चस्व प्राप्ति का यह प्रयत्नशील युग था। देश की हड़प्पा- मोहन जोदोडो में मिले सभी अवशेष भारत की प्राचीन संस्कृति को स्पष्ट करती हैं। लोकनाट्य परम्परा जनसाधारण का रंजन प्रबोधन के साथ ही धर्मभाव का भी जतन करती दिखायी देती हैं। रामायण, महाभारत के कथानक,पात्रों के माध्यम से लोकनाट्यों की प्रस्तुति की जाती हैं। उसी के साथ सामाजिक,राजकीय प्रश्न और उन पर व्यंगात्मक प्रतिक्रिया भी देती हैं।

लोकनाट्य में नृत्य,नाट्य, संगीत का उपयोग ज्यादा किया जाता हैं। कलावंत अनेक प्रकार के सोंग (रूप) लेकर अभिनय करते हैं। लोकनाट्यों में अभिजात संस्कृत नाट्यबीज मिलते हैं। प्रस्तुति में किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नही होती है साथ ही परम्परागत लोकवाद्यों का प्रयोग किया जाता हैं। आज भी गाँवों के त्यौहार,उत्सव, महोत्सवों में इन लोकनाट्यों का आयोजन किया जाता हैं।

लोकनाट्यों का रंगमंच सरल होता हैं। गाँव का चौराह, खुला मैदान, मन्दिर की खुली जगह. कलाकार और दर्शकों के बिच का अंतर कम होने के कारण दर्शकों द्वारा मिलता वा...वा... का प्रतिसाद बड़ा प्रेरणादायी होता हैं। खुश होने पर बक्षिस भी मिलता है। कुछ लोकनाट्यों में दानदाता का नाम रंगमच से संबोधित भी किया जाता है। ऐसे लोकनाट्यों का अध्ययन हम यहां करने वाले है।

1.1 लोक नाट्य – अर्थ, परिभाषा तथा विशेषताएँ :-

लोकनाट्यों के अध्ययन से पूर्व हमें लोकनाट्यों की विद्वानों द्वारा दी गई कुछ परिभाषाओं पर एक नजर डालना आवश्यक हैं, जिससे हमारे विषय तक पहुँचने में हमे आसानी हो, और कुछ मार्गदर्शन मिल सके। 'लोक शब्द लोक 'दर्शने' धातु से बना शब्द हैं, जिसका अर्थ देखना होता हैं[1]'। बताते हैं की वेदों में 'लोक' शब्द आम जनता का पर्यायवाची शब्द माना गया हैं। आगे उपनिषदों में दो 'लोक' माने गए है 1) **इहलोक** 2) **परलोक।** आधुनिक शब्दकोश में 'लोक' शब्द के आठ अर्थ दिये गए हैं। 1) जगत 2) स्थान 3) प्रदेश 4) दिशा 5) लोक 6) प्राणि 7) यश 8) समाज आदि। हिन्दी साहित्य में 'लोक' शब्द जनसमान्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।

[1] लोकसाहित्य शास्त्र - बापुराव देसाई, पृष्ठ 15

परिभाषाएँ :-

डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय ने इस संदर्भ में कहा हैं की,

'जो लोग संस्कृत या परिकृष्ट वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन रितियों में रहते है वह 'लोक' होते हैं। [2]

डॉ.परमार *कहते हैं की,*

'लोक शब्द का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य, आदि से सुरक्षित हैं और जिसमें भाषा-शैलीगत सामाग्री ही नहीं,अन्य विषयों के अनपढ़ रत्न छिपे होते हैं।'[3]

ऊपर कि गई परिभाषाओं से लोक याने हव वर्ग जो अपनी विचारों एवं संस्कारों से जुड़ा होता है और किसी दूसरे संस्कारों में या विचारों में परिवर्तित करना सभव नहीं होता या वह इन से प्रामाणिक होता है। यह बात स्पष्ट करणे में यहाँ बापुराव देसाई जी द्वार दी गई परिभाषा ही सार्थक लगती हैं की,

*'**लोक**' वह मनुष्य समाज हैं जो अपनी परम्पराओं मे प्रचलित रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, लेन-देन और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने सेअशिक्षित कहलाते हैं।* [4]

ऊपर दी गई सभी परिभाषाएँ और संदर्भ स्पष्ट करते हैं की भारत में आज भी जो जनसमूह ज्यादातर अविकसित गावों में बसा हैं, और पारंपरिक खेती में कष्टकर भारत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा हैं वह समूचा जनसमूह 'लोक' हैं।

भारतीय परंपरा, सभ्यता,संस्कृति जिस लोक समुदाय ने बिना किसी शर्त या फायदे के संजोकर रखी हैं। ऐसे संवेदनशील समूहों ने अपने क्षेत्रिय पृष्टभूमि पर अपनी विशिष्ट संस्कृति का उदय,और विकास भी किया है।

इन लोगों द्वारा उत्पन्न यह लोक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति कही जा सकती है। अंचल में प्रचलित जादू-टोना, तंत्र- मंत्र भूत-प्रेत,दोरा-ताबीज शकुन-अपशकुन देवी-देवता,रहन-सहन, खान-पान रीति-

---

[2] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
[3] डॉ. परमार
[4] लोकसाहित्य शास्त्र - बापुराव देसाई

रिवाज चाँद कथाएँ, विधि, गीत संगीत, नाटक-लोकनाट्य आदि जन साधारण की संस्कृति का निर्धारण करते हैं।

"लोक और लोक संस्कृति की परिभाषाओं पर विचार करने पर हम देखतें हैं की इस लोक संस्कृति का एक प्रमुख पक्ष लोकनाट्य है जिसपर आज हमें केन्द्रित होकर हमारे विषय तक पहुचना हैं। भारतीय लोकनाट्यों की परंपरा विशाल हैं, जिसे किताबी पन्नो में बांधना संभव नही है। पर फिर भी उस परंपरा पर दौड़ती नजर डालकर उसके महत्व और विकास का अध्ययन यहाँ करना आवश्यक हैं।"

जिस लोक कि यहाँ बात की जा रही है, वह वास्तव में वह हम सब का अतीत है जो आज भी उपस्थित है और कल भी रहेगा। समय कभी बदलता नहीं घटनायें समय में बदलती है। यह बात समझने के लिए जीवन चला जाता है प्रगति यह आवश्यक है पर वह प्रगति उस समाज के लिए होनी चाहिए जिस समाज का हम एक हिस्सा है। नाकी उस भविष्य के लिए जो किसिके बस में नहीं है। हमारे सुनहसरे भविष्य कि चिंता में हमारा भूत बिना सुधारे आगे बढ़ रहे है और यही वह भूल है जो हमारी मानसिक उलझाने बढ़ा रही है। ऊपरी सभी परिभाषाओं से यह कह सकत है कि, हमारी जड़ों तक जाने का प्रयत्न जो हमार

जिन मूल निवासियों की बात पहले की गई थी शायद ये सभी लोग उन्ही संप्रदाय से संबद्धित हो जो आर्यों के आक्रमण के बाद हुये परिवर्तनशील युग का हिस्सा न बनकर अपनी सभ्यता संस्कृति और परम्परा को संभालते रहे हैं वो भी बिना किसी फायदे के। यहा अपनी बात अधिक स्पष्ट करने में **डॉ.सत्य गुप्ता** की व्याख्या आधिक महत्वपूर्ण साबित हो सकती हैं।

'लोक साहित्य लोक की मंगलकामनाओं की विराट सौंदर्याभिव्यक्ति हैं, जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं है। इस विराट सौन्दर्य को,जो संसार में हर लोकमानस तथा लोकसमाज की पृष्ठभूमी में समान रखने का वह सेतु हैं, जिस के सहारे कला तथा संस्कृति विकास के लक्ष्य तक पहुँचती हैं'।[5]

अब लोक साहित्य से प्रदर्शनकारी कालाओं की और चलते हैं और साहित्यकारों ने इन प्रदर्शनकारी कलाओं के बारे में जो वर्गीकरण किया हैं उसे समझने का प्रयत्न करते हैं।

[5]लोक साहित्य शास्त्र – बपुराव देसाई

अनेक विद्वान, लोकसाहित्य और लोकवार्ता में कोई फर्क नहीं मानते हैं। लोक वार्ता के विशेष अध्ययनकर्ता **डॉ.हरद्वारीलाल शर्मा** ने ***लोकवार्ता को लोकवार्ता विज्ञान खंड-1*** में तीन भाग में बाँटा हैं।

1) कथात्मक 2) कलात्मक 3) प्रथात्मक

इन तीनों में से कलात्मक प्रदर्शनकारी कला के बारें में उन्होने कहा हैं कि। "कलात्मक लोकवार्ता में, चेतना तथा लोकरुचि से संबंध सृजनात्मक विविधताएँ हैं । इसमें उत्सव,गीत, संगीत,वाद्य,नाट्याभिनय,खेल,प्रदर्शन,जादूगरी,हाथ की सफाई नृत्य,चित्रमूर्ति,शृंगारपरस्ती,स्थापत्य,आदि समाहित हैं।"[6]

डॉ.सत्येंद्र ने 'लोक' को फोक का पर्याय स्वीकार करते हुएं कहा कि "'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग हैं, जो आभिजात संस्कार,शास्त्रीयता,के अहंकार से शून्य हैं और जो एक परंपरा के प्रभाव में जीवित रहता हैं।"[7] **(लोकसाहित्य हरीश)**

लोकवार्ता को अनेक विद्वानों ने लोकसाहित्य का अंग माना हैं और लोकवार्ता के कलात्मक प्रविधि में रखा हैं उन लोकनाट्यों की कुछ परिभाषाएँ भी हमें देखननी आवश्यक हैं।

'लोकनाट्य सामूहिक आवश्यकताओं से निर्मित होने के कारण लोक कथानकों, अलौकिक विश्वासों और लोकतत्वों के समेत चलता हैं और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है'[8] ***। (डॉ.नरेंद्र भारतीय नाट्य साहित्य पृ.84)***

'लोक धर्मी रूढ़ियों का अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्यरूप जो अपने-अपने क्षेत्र में लोक मानस को आह्लदित, उल्लासित एवं अनुप्राणित करता हैं वह लोक नाट्य कहलाता हैं'।[9]

(डॉ.श्रीराम शर्मा राजस्थानी लोकनाट्य पृ.03)

---

[6] लोकवार्ताविज्ञान खंड -1- डॉ.हरदारीलाल शर्मा

[7] लोकवार्ताविज्ञान खंड -1- डॉ. सत्येन्द्र

[8] भारतीय नाट्य साहित्य - डॉ. नरेंद्र

[9] राजस्थानी लोकनाट्य – डॉ.श्रीराम शर्मा

'लोक साहित्य से तात्पर्य हैं उस रूप से जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण समाज से हो और जो परम्परा से अपने-अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो'।[10] ***(डॉ. श्याम परमार – लोकधरमी नाट्य परंपरा पृ. 19)***

इन सभी परिभाषाओं से और विवरण से यह स्पष्ट हो सकता हैं की लोकनाट्य वह मनोरंजन कला हैं, जो विश्व के सभी भाव भावनाओं के साथ मानवी विचारों एवं कलाओं का सामान्य निवारण कर उसे मनोरंजनात्मक माध्यम से बड़े से बडे तत्वज्ञान, एवं विचारों को सामान्य रूप देकर, अपना असर सामान्य जनसमूह पर दिखाता है, पर स्वयं को अपनी जड़ों में रखकर अपने अस्तित्व को उजागर नहीं करता, उसे ही **लोकनाट्य** कहते हैं।

भारत के हर प्रांत में लोकनाट्य उपस्थित है, यह वास्तव में भारत की सांस्कृतिक परंपरा है, जो विकसित होती गई या हो रही हैं। महाराष्ट्र हो या मणिपुर, केरल हो या उत्तर प्रदेश, सभी ने अपने-अपने भौगोलिक परिवेश को संभालते हुये लोकनाट्यों को जीवन में अमूल्य महत्व दिया हैं इन्ही लोकनाट्यों की परम्परा भारत में उपस्थित हैं। जो कुल मिलाकर 'लोक' संज्ञा में व्याप्त हैं और जिसका एक शास्त्र निर्माण हो सकता है। जिस प्रकार भारत में पंचमवेद की परंपरा रही हैं उसी प्रकार आने वाले समय में भारतीय लोकनाट्य शास्त्र की भी एक परंपरा विकसित हो सकती हैं। भारतीय लोकनाट्यों की परंपरा में हमें कुछ विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं जो सम्पूर्ण भारत में लगभग सभी लोकनाट्यों में एक सी दिखाई हैं उन विशेषताओं को यहा स्पष्ट करना आवश्यक हैं।

डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय अपनी किताब **लोक साहित्य की भूमिका पृ.146** में लोकनाट्यों के दो भेद करते हैं।

1) प्रहसनात्मक 2) नृत्य नाट्यात्मक

प्रहसनात्मक :-

'किसी भी कथानक का (महाभारत,रामायण या अन्य) कथानक एवं पात्रों के माध्यम से हास्यनिर्मिति और उस हास्य के पीछे प्रबोधनात्मक मर्म विहित होता हैं जिसे मंचन करते हुवे विनोदात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाता हैं इसे हम प्रहसनात्मक लोकनाट्य कह सकते हैं।' [11]

[10] लोकधरमी नाट्य परंपरा – डॉ.श्याम परमार

उसी प्रकार दूसरे भेद में वे कहते हैं

2) **नृत्य नाट्यात्मक :-**

किसी सामाजिक या पौराणिक घटना में संगीत,नृत्य,और अभिनय की त्रिवेणी प्रवाहित रहती हैं नाट्य के चलते संगीत(जो प्रादेशिकता से जुड़ा हैं) और हास्य निर्माण,कथानक के माध्यम का उपयोग कर प्रस्तुत किया जाता हैं

भारतीय लोकनाट्यों की इस **श्रुखला** में हमें कुछ समानताएँ सभी लोकनाट्यों में दिखती हैं। जो सभी लोकनाट्यों में उपस्थित हैं।

1) भाषा :-

यह स्पष्ट हैं की लोकनाट्य प्रादेशिकता को प्रखरता से स्पष्ट करता हैं, उस में भाषा भी एक अंग हैं लोकनाट्य की भाषा प्रादेशिक होती हैं,और उसमें भी वह प्रमाण भाषा को नकारते हुवे अपनी मातृ भाषा का प्रयोग करती हैं। जो सरल एवं सहज जनसमान्य को समझने वाली एवं बोधात्मक होती हैं। ये लोककलाकार उसी भाषा का प्रयोग प्रस्तुति में करते हैं जो उनके द्वारा जीवन मे प्रयोग में लाये जाते हैं।

2) संवाद :-

लोकनाट्यों में संवाद सरल एवं छोटे होते हैं। आवश्यक नैतिकता संभाले भी होते हैं। अपनी बोली को ही संवादों के लिए प्रयोग में लाया जाता हैं। प्रश्न-उत्तर के रूप में अपनी बोली में यह संवाद ज्यादा होते हैं।

3) कथानक :-

लोकनाट्यों के कथानक ज़्यादातर पौराणिक,एतिहासिक या स्थानिक कथाओं पर आधारित होते हैं, उन्हे सामान्य स्तर पर लाकर मंचित किया जाता हैं। महाभारत या रामायण के किसी भी कथानक को ये ग्रामीण कलाकार उन्हे जिस प्रकार संभव हो वैसा प्रस्तुत करते हैं। संवादों को अपनी भाषा देते हैं और दर्शकों का खासा ध्यान रखते है।

11लोक साहित्य की भूमिका – डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय

4) पात्र :-

लोकनाट्यों में पात्र प्राय: पुरुष ही होते हैं, स्त्री भूमिका भी पुरुष ही करते हैं। समसमायिक लोकनाट्यों में आजकल विशेष उद्देश प्राप्ति के लिए स्त्री पात्रों का उपयोग किया जाता है। पर यह संख्या कम हैं कृष्ण, पेंद्या और गवलन(गोपिया)और कई प्रकार के देवी-देवताओं का आभास/अभिनय किया जाता हैं।

5) चरित्र चित्रण :-

कृष्ण हो या पेंद्या हो या और कोई पात्र हो वह अपने पात्रों के माध्यम से जन सामान्य का प्रतिनिधित्व करते नजर आते हैं और सामान्य भाव-भंगिमाओं को अभिव्यक्त करते नजर आते हैं।

6) रूप योजना :-

लोकनाट्यों की परंपरा में अगर कुछ प्रांत के लोकनाट्यों को छोड़ दिया जाये, तो रूपसज्जा का महत्व नहीं होता हैं स्वाभाविक पहराव,और स्वाभाविक रंगभूषा में वे अभिनय करते हैं। बहुत दिखावे की वह अपेक्षा भी नहीं करते हैं और उनसे वह संभव भी नहीं हो पाता हैं। पर लोगों तक अपना संदेश पहुचाने में वे पूरे सक्षम होते हैं। यह इन लोकनाट्यों की विशेषता समझी जानी चाहिए।

7) रंगमंच :-

इन लोकनाट्यों की प्रस्तुति के लिए किसी विशेष नाट्यगृह की आवशकता नहीं होती हैं। गाँव का मन्दिर हो या छोटा स्कूल या कोई चौपाल जहां भीड़ एकत्रित हो सके ऐसी कोई भी जगह पर थोड़े बहुत श्रम से या अर्थ के सहारे यहाँ रंगमच तैयार किया जाता हैं। कुछ गाँव में तो यह लोगों के श्रमदान द्वारा भी बनाया जाता हैं

देखा जाये तो आर्तो से लेकर ब्रेख्त तक विश्व में सभी महान रंगचिंतक और रंग विचारधाराएँ जो रंगमंच की खोज में रही हैं, वह प्रयोगिक अंग हमारी लोकनाट्यों में पहले से उपस्थित हैं। आज भी उनके अध्ययन से यह हम स्पष्ट कर सकते हैं।

1.2 लोकनाट्यों का उद्भव :-

श्री जगदीश चन्द्र माथुर अपनी किताब परंपराशील नाट्य में लिखते हैं की भारतीय नाट्यशास्त्र को पंचम वेद का दर्जा मिलने में कुछ बातें कारण बनकर सामने आयी वे बातें थी कि शूद्र तथा अन्य जतियों के लोग वेद पाठ से वंचित थे। इसलिए येसे वेद की आवश्यकता जो सभी वर्गों की जनता के लिए उपदेय हो। दूसरी बात यह हैं की नाट्य शास्त्र में ऋग्वेद से पाठ्य,सामवेद से गीत,यजुर्वेद, से अभिनय और अथर्ववेद से रस का संग्रह। और तीसरी बात है की नाट्य सभी प्रकार की कलाओं, शिल्पों के ज्ञान से संपन्न होने के कारण पंचमवेद कहलाने योग्य था। यहां यह बात भी स्पष्ट करना जरूरी हैं की कोल एवं द्रविड़, जो भारत की अत्यंत पुरानी जातियां रही हैं वे बहुत कला प्रेमी एवं नृत्य,नाट्य,तथा संगीतकला की अभ्यस्त तथा विषयों मे रुचि लेने वाली थीं।

इस भारत वर्ष में आर्य बाहरी देश से आयें हो या फिर यहीं के निवासी रहें हो वे सप्त-सिंधु नामक प्रदेश में निवास किये और वही से सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैले। **श्रीनेत्र पाण्डेय** अपनी पुस्तक "**भारत वर्ष का सम्पूर्ण इतिहास**" मे लिखते हैं की 'विघ्न-पर्वत तथा घने वनों के कारण दक्षिण भारत में बहुत दिनों तक आर्यों का प्रवेश नहीं हो सका इन गहन वनों तथा पर्वतों को पार करने का साहस सर्वप्रथम ऋषियों तथा मुनियों द्वारा हुआ। कहा जाता हैं की सबसे पहले अगस्तऋषि दक्षिण भारत में गए थे। आर्यों की इस सांस्कृतिक विजय से भारत के कोने-कोने में आर्य सभ्यता तथा संस्कृति का प्रचार हो गया। इस पृष्टभूमि का संदर्भ देना इसलिए आवश्यक है क्योंकि वैदिक ग्रंथ उन ग्रंथो को कहतें हैं जिनकी रचना भारतीय आर्यों ने भारत वर्ष में ईसा पूर्व 2500 से 5.0 ईसा में की थी।'[12]

भारत मे इन आर्यों के प्रचार प्रसार से अनेक परिवर्तन हुये। वेदों का निर्माण भी इसी का अंग था। चारों वेदों का निर्माण और अरण्यक,(अरण्य में लिखे गयें ग्रंथ) उपनिषद, और सूक्त इन सभी का निर्माण इन्ही आर्यों की सांस्कृतिक पहचान थी। आज यही ग्रंथसंपदा भारत को एक सबसे सुसंस्कृत देश की ख्याति प्राप्त करवाने में मदद करती है। इन सभी ग्रंथो से भारत की उत्कृष्ट जतियों के इतिहास की झांकी तथा इतिहास बनाने का महत्वपूर्ण साधन और पूर्वजों के जीवन का प्रतिबिंब, सभ्यताका मूलाधार, हिन्दू धर्म का प्राण, आध्यात्मिक विवेचन का कोश, समाज के स्तंभ, तथा भारतीय भाषायों की जननी के रूप में इन्हे देखा जाता हैं।

[12] भारत वर्ष का सम्पूर्ण इतिहास – श्रीनेत्र पाण्डे

इस विवेचन से इस ओर ध्यान आकर्षित करना हैं कि इन अनार्यों का, उन मूलनिवासियों का क्या हुआ जो इस देश के पुरातन या पुरानी जातियाँ कही गयी थी? उनकी संस्कृति,सभ्यता, मान्यताएँ, सब कहां और किस कारणवश लुप्त हो गई? क्या उन अनार्यों की कोई पहचान नहीं थी? क्या इस पूरे प्रक्रिया में वे बस देखते ही रहे थे? या उन्हें इन सब बातों से वंचित रखा गया था? या उन्होने स्वयं ही अपने आप को इन बातों से दूर रखा था?

कारण जो भी रहे हों यह तो स्पष्ट हैं की आर्यों के अनार्यों पर बढ़ते वर्चस्व के कारण वेदों के निर्माण से अनेक परिवर्तन इस भारत वर्ष में होने लगे थे। मनुष्य जीवन के प्रत्येक कार्य में इन वेदों का महत्व बढ़ा गया था राजनीति,समाजनीति,अर्थनीति वर्णव्यवस्था,कुलनीति इन सभी में हस्तक्षेप करने वाले इन वेदों ने यहां की मूल संस्कृतिक रचना को पूरी तरह से झिझोड़ दिया था, या लुप्त होने की कगार पर खड़ा कर गया था। इस बात से यह स्पष्ट हैं की इस परिवर्तन की प्रक्रिया ने भारत की संस्कृतिक पृष्टभूमि बदल कर रख दी थी। रंगमच के परिप्रेक्ष में देखा जाए तो भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का निर्माण और उसे स्वीकार कर नाट्यपरंपरा का पालनकर्ता वर्ग इनके माध्यम से मूल भारतीय नाट्यपरंपरा जो यहां की सही मायनों मे नाट्यपरंपरा थी, उसका अस्तित्व नष्ट करने में यह परिवर्तन सहायक साबित हुवा हैं।

कोई भी कला जो मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम होती हैं। वह समाज में रूढ़ियों,मान्यतायओं के रूप में प्रचलित होती हैं,और परिवर्तन की प्रक्रिया में अपना रूप बदलते हुए शास्त्र का रूप धारण करती रहती हैं।

जिस प्रकार ऋग्वेद,सामवेद,यजुर्वेद,और अथर्ववेद से पाठ्य,गीत,अभिनय,और रस, का वर्णन मिलता है, यह स्पष्ट करता हैं की यह पाठ्य,गीत,अभिनय, और रस, मानव समाज में पहले से ही उपस्थित रहा होगा। परिवर्तन की स्थिति में आज के शास्त्र बनने की प्रक्रिया तक शायद पहुंचा जा सके तो यह बात और स्पष्ट रूप से समझी जा सकती हैं। पर इन ही बिखरे हुये सभी वस्तुओं को एकत्रित कर बना नाट्यशास्त्र वास्तव में पूर्वस्थित इन कलाओं का सुधारित एवं संगठित नियमबद्ध पद्धती से लिखा गया ग्रंथ हैं।

पंचमवेद के माध्यम से हम यह तो जान सकते हैं की वैदिक काल की नाट्यकलायें किस उच्च कोटी की रही होगी या उन पर विचार मंथन बहुत सखोल अध्ययन का था। 11 वि.शताब्दी से 12 वी शताब्दी में जब संस्कृत नाटक लुप्त होने लगे थे और राजप्रसादक पर आश्रित नाट्यधारा को छोड़ जो

कलाएं मंदिरों,उत्सओं और जन मनोरंजन के रूप मे कायम रही। यही पर उसकी प्रयोगिक चेतना बनी रही क्योंकि बीते समय की धारणाओं से ये कलाएं प्रभावित रही और सामान्यजन समूह की अभिरुचि को अभिव्यक्त भी करती रही।

इसी अभिरुचि ने भारत के अनेक प्रान्तों एवं अंचलों मे अपने भौगोलिक पृष्टभूमि पर आधारित अपने मनोरंजन और अभिव्यक्ति के माध्यम का निर्माण कर लिया था जो आगे चल कर फिर लोक कलाओं के नाम से प्रचलित हुआ। ये लोककलाएं पूरी तरह लोकधर्मी और नाट्यधर्मी मान्यताओं पर आधारित थी।

हमने देखा की भारत में नाट्यशास्त्र के पूर्व भी लोकरंगमंच का अस्तित्व था। राजाओं और सामंतों का गुणगान करने वाले भाट ही आगे चलकर सूत्रधार बने संस्कृत का मृतप्राय होना और साथ ही प्रादेशिक बोलियों का सक्षम होना यही कारण था की लोकरंगमंच निवेदन से आगे संवादों की दिशाओं में आगे बढ़ा।

संस्कृत नाटकों के बाद यानी आठवें नौवी शताब्दी से लेकर तो अट्ठारहवीं उन्नीसवी शताब्दी तक पूरे बराह सौ वर्ष महत्वपूर्ण कार्य लोक रंगमंच ने किया था। संस्कृत रंगमंच जो कालीदास,भास, शूद्रक,जैसे संस्कृत नाटककारों से सम्पन्न हुआ करता था, उसी के तत्वों को संभालकर रखने का महत्वपूर्ण काम इस लोक रंगमंच ने किया। भारत के सभी लोकनाट्यों मे आज भी मंच प्रस्तुति के प्रारम्भ में भगवान का वंदन होता हैं यह परंपरा शायद उसी का प्रमाण हैं। यह धरोहर हम तक पहुंचाने का काम इस लोक नाट्यों ने ही किया हैं। मंच प्रस्तुति की पद्धति,वाद्य रचना, सभी संस्कृत नाट्यपरंपरा की ही पद्धति जिसे लोकनाट्यों ने संभालकर हम तक पहुंचाया। हो सकता हैं की उस वक्त के कलाकारों ने अपनी प्रतिभा और पारंगत कला का उपयोग कर आवश्यक कुछ बदलाव कर अपने प्रादेशिक कला का जो कुछ मंचन किया उसे ही आज हम लोकनाट्य कहते है, या बदलाव की प्रक्रिया में जो परिवर्तन संस्कृत नाटक में हुये उन्हे संभालकर रखने का काम इन लोकनाटयों ने ही किया हैं।

जो नाट्यपरंपरा सामान्य जनसमूहों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपयोग में लाकर वास्तव में उसका संवर्धन,जतन किया तथा उसमें अपनी प्रतिभाओं का जो उन्नयन और आविष्कार उनके द्वारा जाने-अनजाने में हुआ उसके द्वारा एक सक्षम प्रादेशिक लोकरंगमंच आज तक जीवित रहा है।

वास्तविकता तो यह हैं कि समाज में कलाएं और अभिव्यक्ति के माध्यम हमेशा से ही उपस्थित रहे हैं। कुछ समय बाद इसे ही शास्त्रबद्ध तरीके से एकत्रित कर संपादित किया जाता हैं और इस प्रकार शास्त्र का निर्माण होता हैं। और फिर इसी शास्त्र से सुधार पाकर अभिव्यक्ति के वे मूल गुण पुन: उसी मानव जीवन में विलीन हो जाते हैं और सामान्य जीवन के अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाते है। इन ही प्रक्रियाओं से कलाओं का पुन:निर्माण होता है इसीलिये प्रस्तुतीपरक कलाओं के उदय विकास और अस्त का क्रम निरंतर चलता रहता हैं। कह सकते हैं की लोकाभिव्यक्ति के यही मुख्य तत्व है जिन्हे संभाल कर विविध माध्यमों से प्रस्तुत किया जाता हैं, और इन प्रस्तुतियों को कलाओं का नाम दिया जाता हैं। कुछ भी हो यह बात शाश्वत हैं की लोककला भारत में नाट्यशास्त्र के पहले से ही उपस्थित थी और पंचमवेद से लेकर आज तक जीवित है। भारत में आज हर प्रान्त ने अपने लोकनाट्यों को विकसित कर लिया है तथा विविधता मे एकता का सही अर्थ हमें दिखाता है । इसी पूरी प्रक्रिया में आज हम भारत की कुछ लोकनाट्यो का अध्ययन विषय के संदर्भ मे करने वाले हैं।

एक लुप्त होता अध्याय

हमने देखा कि आर्यों की विकास प्रक्रिया से शुरू होकर वेदों,आरण्यकों से गुजरती यह नाट्य परंपरा भरतमुनी के पंचमवेद तक अपनी पूरी विकसित स्थिति में आ पहुंचती है। इस संदर्भ में कुछ प्रश्न भी उपस्थित किये गए थे, उन्ही पर यहां चर्चा की गई हैं जो कि विषय के संदर्भ में आवश्यक हैं आर्यों द्वारा विकसित हो रहे इस युग में उन मूल निवासियों की कला या अभिव्यक्ति के साधन क्या हुये यह एक प्रश्न हैं?

सातवे आठवे शताब्दी तक संस्कृत लोगों के जीवन से दूर हो गयी थी उसकी जगह प्रान्त बोलियों ने ले ली थी। तथा इसे जनसमूह ने स्वीकार कर लिया था। इसी बीच संस्कृत नाटक भी पूरी तरहा नष्ट हो गया था और पूरा देश प्रान्त बोलियों का प्रयोग करने लगा था।

इस संस्कृत परंपरा का जतन करने वाली परंपरा संपन्न "चारण' जमाती के लोगों ने इसे संभाल कर रखा था पर कुछ समय बाद इन्ही लोगों द्वारा जीवन चक्र चलाने के लिए इस परंपरा का उपयोग व्यवसाय के रूप में किया जाने लगा हो सकता हैं की यही उनके द्वारा लोककलाओं के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में उठाया गया एक कदम हो। जीने का साधन बनी इन कलाओं ने अपने महाकाव्यों की रचनाएँ सुनाकर,गाकर लोगों के मध्य अपना बसेरा बना लिया आगे चलकर राजाओं और सामंतों के आश्रय से

प्रतिष्ठा प्राप्तकर वह प्रसिध्द हो रहे थे और चारण से 'भाट' की उपाधि पाने में भी सक्षम हो गए थे। राजाओं के और सामंतों के आश्रय से यह कला और कलाकार एक जाति के रूप में प्रस्थापित हो गये थे। कला को अपनी विकास की ओर बढ़ना ही था इसलिए यह राजमहलों से निकल कर प्रांत-प्रांत,अंचल-अंचल घूमने लगी और जन साधारण के जीवन का हिस्सा बन गयी। उसने अपने विकास का मार्ग खोज लिया, जन समुदाय की मुक्त और शुद्ध अभिव्यक्ति का माध्यम बनी।

1.3 भारतीय लोक नाट्य परंपरा :-

भारतीय नाट्यशास्त्र में आठ रसों का उल्लेख मिलता हैं। इसी श्रृंखला में एक और रस का निर्माण हुआ जो शांत रस के नाम से पहचान जाता हैं, यह शांत रस, जिस भक्ति संप्रदाय से उपस्थित हुआ वह भक्ति संप्रदाय भक्ति को जनसमूह तक पहुंचने का कम कर रहा था और भारत के विविध प्रान्तों में इनसे ही प्रेरणा पाकर अनेक कलाकारों ने लोकनाट्यो का विकास करना प्रारम्भ कर दिया था। अपनी भौगोलिक पृष्टभूमि और वातावरण से मनुष्य के स्वभाव का निर्माण होता हैं और उसके अभिव्यक्ति के माध्यम भी अलग अलग होते हैं। विकसित हो रहे इन लोकनाट्यो ने प्रान्तों के बाहर जाकर भी अपनी कला का प्रदर्शन करना शुरू कर दिया था इस प्रांन्तीय भ्रमण ने इन कलाओं कों नया चेहरा दिया। महाभारत, रामायण के साथ अब इन खेलों में महापुरुषों के वर्णन और उनकी महती भी प्रस्तुत होने लगी थी। पोवाड़ा उसका एक उदाहरण है। इसी के साथ नाट्य ने भी अपनी प्रगति की रह खोज ली थी तंजावर प्रान्तों से आये भागवत मेलों द्वारा हुआ मराठी रंगमंच का इतिहास इसका उदाहरण हैं, सम्पूर्ण भारत के लोकनाटयों को समकालीन भारतीय रंगमंच ने सृजन या प्रयोगिक रंगमंच के बीज की तरह उपयोग में लाया उन भारतीय लोकनाट्यों की परंपरा को हम आज यहां संक्षिप्त मे देखने वाले है।

नौटंकी (उत्तर प्रदेश) :-

स्वाँग' और 'लीला' के समान ही नौटंकी भी लोक नाट्य का-प्रमुख रूप है। इसका प्रारम्भ मुग़ल काल से पहले का है। रासलीला के समान इसका रंगमंच भी अस्थिर, कामचलाऊ और निजी होता है। नौटंकी अत्यंत ही लोकप्रिय और प्रभावशाली लोककला है। यह लोककला जनमानस के मन से भीतर तक जुड़ी हुई है। नौटंकी को गाँवों वालों के लिए जानकारी प्रदान करने, सामाजिक कुरीतियों से परिचित कराने और सस्ता किंतु स्वस्थ मनोरंजन का ज्ञानवर्धक और मनोरंजक साधन माना जाता है। उत्तर प्रदेश केलगभग सभी बड़े शहरों-

लखनऊ, आगरा, मेरठ, वाराणसी, गाज़ीपुर, जौनपुर, आजमगढ़, मिर्ज़ापुर, गोरखपुर, बलिया, मथुरा आदि में दर्जनों नौटंकी और थियेटर कम्पनियाँ थीं।नवटंकी की कथा स्वाँग लोकनाट्य की कथा है जो इतनी प्रसिद्ध हुई की उसी के नाम से इसे पहचानी जाने लगी।

प्रो.माणिक कानेड अपनी किताब में लिखतें हैं कि नवटंकी मुलतान की राजकन्या थी जो बहुत सुंदर होने से प्रसिद्ध थी, जिसके सुंदरता की चर्चा चारों दिशाओं मे फैली हुई थी, फुलसिंह वीर रूपवान युवा था। भाभी से ताने सुनकर वह निश्चय करता हैं की अब तो मै नवटंकी को अपना बनाकर ही घर आऊँगा। वह घर छोड़ता हैं और नवटंकी से मिलने जाता हैं। वो स्त्री परिधान पहन कर जब नवटंकी से मिलने जाता है तो हास्य निर्मिति होती हैं उसका नवटंकी से मिलना, दोनों का प्यार, राजा का विरोध,नवटंकी का त्याग,और फिर आखिर में सुखद मिलन। तो दूसरी ओर **डॉ.रामनारायन अग्रवाल भगत** इस 'नवटंकी को ख्याल गायकी से जोड़ते हैं पूर्वमध्यकालीन या उत्तर मध्यकालीन लोक कलाओं के स्त्रोत जो ऊन्नीसवी बीसवी शताब्दी मे विकसित हुई लोक नाट्य विधा हैं।' एक और कहानी नवटंकी के नामकरण के बारे मे मिलती हैं। जो भारतीय लोक नाट्यो के अभ्यासक **डॉ.वसिष्ठ नारायण त्रिपाठी** लिखते हैं की,

'नवटंकी नाम सन 1910 के आस पास कानपुर में ही मिला इसका श्रेय नक्कारा वादक मैकु उस्ताद को जाता हैं मैकु उस्ताद इस खेल के बीच के समय में नक्कारा रखकर उसके चारों और 12 झिले रख देता था प्रदर्शन के समय वे12 झीलो पर अपनी चौवें घूमाकर अंत में नक्कारे पर टंकार मारता था। यह एक नवीन प्रयोग और नवीन टंकार थी जिसके कारण इस नवटंककार वाले खेल को कानपुर में नाम मिला नवटंकी !' वह आगे कहते हैं की

इस प्रकार माथुर की भागवत परंपरा हाथरस में स्वाँग हुयी,और कानपुर में यही स्वाँग नवटंकी हुयी।

भवाई (गुजरात) :-

गुजरात का नाम लेते ही आंखों के सामने आता है 'गरबा'। गरबा अंबादेवी की पूजा के समय करने वाला 'गरब नृत्य' से प्रचलन में आया हैं। रस नृत्य का द्वार छोड़ इस नृत्य ने कविता तक अपने को बढ़ा लिय था। वहां यह स्वीकृत भी हुआ फिर साहित्य संगीत के क्षेत्र में विराजमान हो गया। 15 वी सदी में लिखा गया रंगसागर नेमीफागु ,वसंत विलास और नटऋषि का फागु इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

कई विपरीत परिस्थितियों के बाद भी गुजरात ने 19 शताब्दी तक हमारी महकाव्यों से प्रेरणा लेकर अनेक महत्व पूर्ण साहित्य की निर्मिति की हैं पर भवाई को पहचान मिली 1960 के बाद।इसकी एक विशेषता यह भी हैं की इसने (भवाई) पुरानी परंपरा से जुड़े रहने के बाद भी अपने आप को पौराणिक विषयों से दूर ही रखा।

भवाई के बारें में कई कहानिया सुनने को मिलती हैं। पर देखा जाएँ तो अंबादेवी के नृत्य से उत्पन्न यह लोक नाट्य पौराणिक कथा और भक्ति की किसी अंग से मेल नहीं खाती ।अध्ययन से यह भी समाने आता है की ये (भवाई) लोकनाट्य पहले से तिरस्कृत संप्रदाय की धरोहर रही थी।

अंकीय नाट (आसाम) :-

वैष्णव संत श्री शंकर देव जी को अंकीय नाट का प्रवर्तक कहा जाता हैं। अंधविश्वास,और कर्मकाण्ड जैसी बुराइयों को समाज से दूर भागकर जनसाधारण को भक्ति के और मानवता धर्म की शिक्षा देने के लिए इन्होंने इस लोकनाट्य का उपयोग किया था ।ऐसा ही प्रयोग संत एकनाथ महाराज ने महाराष्ट्र में भारुड़ को लेकर किया था। अंकीय नाट की एक परंपरा रही हैं जो जनसाधारण के शोषण और समांत के साथ ही उसके हक और मानवता की बात करती थी । संस्कृत के लुप्त होने के बाद जो परिवर्तन भारतीय लोक जीवन में हो रहे थे उसी का एक उत्तम उदाहरण यह अंकीय नाट हैं। वैष्णव संत श्री शंकर देवजी वास्तव में कला संस्कृति और परंपरा के विद्वान थे। एक आंदोलन की तरह इन्होने अंकीय नाट का प्रयोग किया और समाज की उन्नति के लिए कार्य किया,आज भी यह लोकनाट्य यही काम पूरी लगन और मेहनत से कर रहा हैं।

इस लोकनाट्य में भी पूर्व और उत्तर रंग होता हैं। पूर्व रंग में वादक और गायकों का आगमन होता हैं। साथ ही भौताल और नगाड़ा जो की इस लोकनाट्य के प्रमुख वाद्य होते हैं इनके साथ बजाकर किया जाता हैं। अंकीय नाट का पूर्व रंग 'घेमाली' के नाम से जाना जाता हैं। साथ ही पूर्व रंग के प्रारम्भ में श्रीमद भागवत ग्रंथ की स्तुति की जाती हैं। उसके बाद नांदी होती हैं। इसमे श्री कृष्ण और उनकी लीलाओं के बारे में वर्णन होता हैं। वेदनिधि ब्राह्मण पात्र विदूषक की कमी पूरी करता हैं।

कर्मकाण्ड से दूर जनसमान्य को भक्ति से जोड़ उसे केवल असम की ही नहीं बल्कि भारत की मुख्य धारा में लाने का काम यह अंकीय नाट करता हैं।

डॉ.ओमप्रशभारती जी अपनी पुस्तक **लोकायन** में लिखते हैं 'की शंकर देव रचित नाटक को अंकिया नाट कहा जाता हैं। अंकिया शब्द विशेषण है और नाट शब्द विशेष्य। अंकीय शब्द का प्रयोग शंकर देव ने नहीं किया था। उनहोंने अपने नाटक को नाटिका,नाट,यात्रा और नृत्य से अभिहित किया था। अनुमानत: यह शब्द उनके बाद प्रचलित हुआ था। इस बात से यह कह सकते है की अंकीय नाट का स्वरूप भी आज उस जमाने से कुछ निराला होता था,या समय के बदलाव में आज उसका स्वरूप कुछ बदल गया होगा। पर यहाँ ये बात करनाआवश्यक हैं कि यह अंकीय नाट 14 वी 15 वी शताब्दी में जन कल्याण के लिए कर्मकाण्ड और अंधश्रद्धा जैसे विषयों पर कार्य कर रहा था।' [13]

भाओना याने नाट्य प्रस्तुत करना! इस लोक नाट्य का प्रमुख नायक भवरिया कहलाता हैं। तो बाकी सभी को नटुवा या नर्तक कहा जाता है।

अंकीय नाट को प्रदर्शित करने के लिए किसी विशेष रंगमच की आवशकता नहीं होती हैं। महाराष्ट्र का दशावतर जिस प्रकार मंन्दिरो के प्रांगण में या किसी खुली जगह में किया जाता हैं। लोगों के श्रमदान से कुछ बुनियादी जरूरतों को पूरा कर इसे आसानी से बनाया जाता हैं। इस खुली जगह में एक पंडाल डाला जाता हैं, उसे रंभाघर कहा जाता है। एक सत्र में कई नाट्य मंडप बने होते हैं। मंडप की दूसरी छोर पर संगीत मंडली को बैठने के लिए एक स्थान बनाया
जाता हैं जिसे *दोहार* कहा जाता हैं। रंगशाला में प्रकाश-व्यवस्था के लिए प्रकाश-स्तभ बनाए जाते हैं। जिन्हें गाछ कहा जाता हैं। भड़कीली वेषभूषा और रंगभूषा का प्रयोग किया जाता हैं। राक्षस,गरुड़,हनुमान,ब्रह्मा,जैसे पत्रों के लिए मुखौटे होते हैं और बाकी पात्र बिना मुखौटों के होते हैं। सूत्रधार की वेषभूषा कुछ विशेष होती है। सफ़ेद वस्त्र पहने सूत्रधार होता हैं। सर पर पगडी होती हैं। घुटनों तक घाघरा होता हैं। हाथों में चाँदी की चूड़ियाँ होती है। कानों में सोने की बालियाँ और पैरों में नूपुर होते हैं। अंकीय नाट का मंचन भी पूर्व और उत्तर रंग मे प्रस्तुत किया जाता हैं। विश्व में अपनी पहचान बना रहा यह अंकीय नाट आधुनिक माध्यमों का उपयोग कर साथ में भारत का भी नाम ऊंचा कर रहा हैं।

कुडियाट्टम :-

8 वी शताब्दी में संस्कृत नाटक लगभग समाप्त हो गया था। संस्कृत नाटक के तत्वों और उसकी मौलिकता को जिन लोकनान्ट्यों ने संजोया उसमे से कुडियाट्टम एक हैं। संस्कृत नाट्य को अपनाकर

[13] लोकायन – डॉ.ओमप्रकाश भारती

अपनी लोक नाट्य को उसके साथ जोड़कर कुडियाट्टम का निर्माण हुआ हैं। इस लोक नाट्य के प्रवक्ता सम्राट कुलशेखर वर्मन माने जाते हैं। 11 से 14 दिनों तक चलने वाला यह नाट्य हैं जिसमें आखिरी के 3 से 4 दिनों में नाट्य का मंचन किया जाता हैं। जैसा की बताया गया हैं की यह नाट्य संस्कृत नाट्यपरंपरा को पूरी तरह से अपनाता हैं इसका मंचन भी पूरे उसी प्रकार किया जाता हैं, इसमें संदेह नही। विशेष बात यह हैं की इसका विदूषक जो सभी बातों का जानकार होता हैं वह पौराणिक से लेकर समकालीन परिस्थिति पर भाष्य करता हैं। यह इस लोकनाट्य का एक विशेष अंग हैं।

अभिनय :- अभिनय के बारे में कहा जाता हैं की भरत द्वारा निर्देशित चारों अभिनयओं का प्रयोग इस लोकनाट्य में किया जाता हैं। इसके लिए अभिनेताओं को अध्ययन और प्रशिक्षण भी दिया जाता हैं। आंगिक, वाचिक, आहार्य,और सात्विक अभिनय का प्रयोग मंच प्रस्तुति के समय देखा जाता हैं। आंगिक अभिनय का प्रयोग इस लक में सबसे ज्यादा किया जाता हैं। भाव मुद्रा,एवं भौहो, नेत्र, मुखपेशियां और हाथों का प्रदर्शन उत्कृष्ठ ढंग से किया जाता हैं। इस लोक नाट्य का दूसरा महत्व पूर्ण अंग वेषभूषा और रंगभूषा होता हैं।प्रस्तुत होने वाले चरित्र के भावों को विशिष्ट शैली के साथ प्रदर्शित किया जाता है,सभी पात्रों की वेषभूषा विशिष्ट प्रकार से बनाई की जाती हैं पर विदूषक की वेषभूषा सबसे अलग और बहुत जटिल प्रक्रिया से की जाती हैं। जिसका उद्देश उस पात्र विशेष को महत्व देने के लिए किया जाता है विदूषक यह सामयिक परिस्थियों पर भाष्य करता हैं फिर भी उसकी वेशभूषा यथार्थवादी न होकर कलात्मक और प्रादेशिकता से परिपूर्ण होती है। डॉ.कपिला वात्सयन ने विदूषक की वेषभूषा के बारे में लिखा हैं की इसमें एक फुला हुआ और एक अधोवस्त्र होता हैं। और एक उत्तरीय जो आगे की और खुला होता हैं किन्तु पीठ पर मुड़ा होता हैं। जिस प्रकार भरत ने पात्र की और उनकी परिधान की कल्पना कर उसे अपने पंचमवेद में समाविष्ट किया हैं उसी प्रकार कुडियाट्टम लोकनाट्य ने अपनी प्रादेशिक विशेषताएँ और संस्कृत नाट्य परंपरा के मिलाप से अपनी पात्र रचना और उनकी वेषभूषा को एक प्रमाण बनाया हैं और उसे अंगीकृत भी किया हैं। सभी पात्र अधोवस्त्र और ऊपरी वस्त्र पहनते हैं ,जिन्हे पृष्ट या परतकम कहा जाता है। राजाओं के लिए हलके लाल रंग, जिन्हे पझुप्प कहते हैं देखा जाए तो संस्कृत नाट्यपरंपरा अपने प्रादेशिक लोकनाट्य में समाविष्ट कर कुडियाट्टम अपना अस्तित्व आजभी संभाले हुये है। यह लोक नाट्य एक विशाल परंपरा का नेतृत्व करती हैं।

यक्षगान (कर्नाटक) :-

लगभग 16 वी शताब्दी से यक्षगान कर्नाटक मे प्रचलित हैं। इसके उदगम को जानने के लिए कन्नड साहित्य एवं कर्नाटकीय नृत्य और गीतों मे इसे ढूँढना होगा साथ ही चारों और के प्रदेशों का आकलन भी करना होगा। यह एक साहित्यिक नाट्य विधा हैं।

कर्नाटक के जैन संप्रदाय मे यक्ष पूजा को मान्यता हैं। वह कर्नाटक में (पद्मावती देवी की) यक्ष देवता की पूजा करते हैं। यक्ष धातु का अर्थ पूजा करना होता हैं। इसअर्थ से देखा जाये तो यह एक धर्म विधि का ही रूप हैं। नागपूजक जमाती के लोक पूजा के समय नाचते गाते और बजाते भी थे। यक्षगान यहां प्राचीन कलाओं का विकसित रूप हैं ऐसा संशोधक शिवराम कारांत बताते हैं।

यक्षगान इस लोक नाट्य में भी स्त्री पात्र पुरुष अभिनेता द्वारा ही किया जाता हैं। मूलत: यह संगीत शैली है। प्रो. माणिक कनेड ने यह स्पष्ट किया है की महाराष्ट्र की दशावतर,तमाशा, गोंधल, जैसे कई लोकनाट्यो का साम्य यक्षगान में देखने मिलता हैं। यक्षगान के चार मुख्य चार प्रकार हमें देखने को मिलते हैं।

तालमददले:-

यक्षगान प्रसंग – महकाव्यों की कथा या महापुरुषों की गाथाओं को उललेखा किया जात हैं। मन्दिरों में या उत्सव प्रसंग में इस तालमददले का आयोजन किया जाता हैं।

बाबेयाटा:-

यक्षगान – यह कठपुतली का नृत्य होता हैं। सूत्रधार के माध्यम से इसका खुली जगह पर मंचन किया जाता हैं। इसके प्रदर्शन में नृत्य,वादन,गायन के साथ घुगरु बांधकर सहकारी वातावरण निर्मिति में सहायता करते हैं।

तोगल बाबेयाटा –

चमड़े की कटपुतलियों का नृत्य विशेष पहचाना जाता हैं। यह एक प्रकार का छाया नाट्य है छाया नृत्य समान होता हैं जो मशालों के उजाले मे या उनकी मदद से प्रस्तुत किया जाता हैं।

दशावतर –

बायालाटा- :- ऊपर दिये सभी प्रकार इस नृत्य में शामिल होतें हैं।

यक्षगान कई परम्पराओं और सभ्यताओं का मिश्रण होकर भी आज लोकनाट्यों की परंपरा में अपना अस्तित्व बनाए हैं और भारतीय लोकनाट्य परंपरा मेअपना स्थान पक्का कर चुका हैं।

माच (मध्य प्रदेश) :-

मंच बनाकर उसपर खेले जाने वाला खेल जिसे माच कहते है। खुली रंगमंच की इस नाट्य शैली में कोकाभि व्यक्ति के सभी रूपों तथा लोकगीतों ,लोकवार्ताओं,लोकनृत्यटोन,और लोक संगीत का समावेश होता है। इस दृष्टि से माचएक त्तोतल थियेटर की संभावनाओनसे परिपूरन है। दो सौ से अधि वर्ष का इतिहास इस परंपरा का है जो आज भी कायम है। राजस्थान,और महाराष्ट्र में ख्याल और लावणी एक लंबे समय तक एक बैठक की गायकी थी। जो बाद में मंच की विषय वस्तु बन गई । मालवा में अनेक रूप प्रचलित है मचान,माचली,माछा,आदि। एक ऐसा स्थान जो सामान्य धरातल से ऊंचा हो और लकड़ियों और तख्तों के माध्यम से बनाया गया हो। माछ नाटकों के लिए ग्राम्य नाटक ,ग्राम-संगीत-नाट्य जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ढाराढारी जाती द्वारा खेले जानेवाला एक ढ़ाराढारी नाम का खेल है प्रस्तुत करने वाले जाती के नाम से यह आगे चलकर विकसित और प्रचलईत भी हुआ। इन खेल में कृष्ण-चरित का अभिनय कराते है। यह लोग अभिनय और नृत्य, के साथ सगीत में भी पारंगत होते है। वैष्णव मंदिरों में भगवान श्रीकृष्ण कि मूर्ति के सामने ढाढ़ी- ढाढ़िनबनाकर नाचने गाने कि प्रथा भारत वर्षों में अनेक स्थानों पर प्राचीन काला से चली आ रही है। एक आदमी ढाढ़ी का स्वांग भरता है और दूसरा ढाढ़िन बनकर दोनों खूब नाचते गाते है। ढाढ़ी हिन्दू भी है और मुसलमान भी। मुसलमान ढाढ़ी 'मलनूर 'कहलाता है।

तूर्राकलंगी :- मालवा, राजस्थान,महाराष्ट्र और उतार-भारत में के विभिन्न भागों में प्रचलित लोकनाट्यों में तूर्राकलंगी यह एक स्पर्धात्मक काव्य गायन कला है जो महाराष्ट्र मे कई लोक नाटयों में नाम के साथ मिलती जुलती है। खड़ी गमात कि तो यह परंपरा एक डैम समान है तूर्राकलंगी कि उतप्सि से लेकर प्रस्तुति तक सभी बाते समान है।

खड़ी गमत कि तरह माच में भी नाच्या होता है यह मुख्य नायिका की भूमिका करता है एक साथ मंच पर तीन या चार पुरुष कलाकार स्त्री वेश में उपसष्टित रहते है और जरुथ पड़ने पर मुख्य नायिका का काम कराते है।

माछ यह एक लोक नाट्य है जिसकी हर बात खड़ी गमत से मिलती जुलती है कूचा बातों में वह बिलकुल भिन्न है तो कुछ बातों में एकदम साम्य रखती है। इन सभी बातों का मतलब यह है कई लोक कलाएं भी संक्रमित होते होते विकसित होती है और अपने क्षेत्रीय अस्मिता का जतन करते हुये लोक मनोरंजन और प्रबोधन का काम करती है।

तमाशा (महाराष्ट्र) :-

महाराष्ट्र का तमाशा यह लोक नाट्य आज भी बड़े शान से खड़ा लोकनाट्य हैं। जीसका अस्तित्व महाराष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में नजर आता हैं। जो लोकनाट्य उनकी रगरग में बसा हैं। तमाशा यह शब्द 'तेलगु' भाषा में रूढ हैं और यह उर्दू से तेलगु में प्रचलित हुवा है। महाराष्ट्र में नाटक या किसी भी मंचप्रस्तुति के लिए खेल(खेळ)शब्द प्रचलित हैं। डॉ. माया सरदेसाई अपनी पुस्तक "भारतीय रंगभूमिची परंपरा" मे लिखती हैं की तनजावर भोसले राजा के नाटक मे 'तमाशा' शब्द विशिष्ट अर्थ से आया हैं। प्रा. माणिक कानेड लिखते हैं की,पानीपत के युद्ध के बाद का समय 'तमाशा'के उदय का रहा हैं। महाराष्ट्र की लोकनाट्य परंपरा इस अगले अध्याय मे हम इस पर विस्तृत चर्चा करने वाले हैं। इस लिए यहा उसे सिर्फ परिचय के रूप मे दिया गया हैं। तमाशा लोकनाट्य मे गण, गवलन,लावणी,शुंगारिक और भेदीक तथा वग (पौराणिक कथानक) ऐसे विशेष अंग होते हैं। और पूरी रात चलने वाला यह तमाशा अपने आप मे एक अद्भुत लोकनाट्य हैं। महाराष्ट्र की माटी में ही नृत्य और नाट्य का गंध बसा हैं पूरे महाराष्ट्र के लोगों ने इसे स्वीकार किया है

1.4 महाराष्ट्र के लोकनाट्य :-

महाराष्ट्र प्रदेश में नाट्य परम्परा दसवे,ग्यारवे,बारा, शतक में भी उयपस्थित थी यह बात संस्कृत नाट्य के आद्य विचारक शारदातनय ने अपने उपरूपक को 'मत्तालिका' नाम देकर यह मत्तलिका महाराष्ट्र मे बहुत प्रसिद्ध थी यह स्पष्ट किया हैं।

'क्षुद्रकथा मत्तालिका यह महाराष्ट्र भाषाय भवति

गोरोचनेन कार्याऽनड़वती स्वभावरसविद्या।। ३९'[14]

(संदर्भ :भारतीय रंगभूमिची परंपरा लेखक : माया सरदेसाई)

ये बात भी उतनीही स्पष्ट हैं की आज उनमें से कोई भी नाटक उपलब्ध नहीं हैं ।महाराष्ट्र भारत का एक ऐसा प्रांत हैं जिसका उल्लेख ऋग्वेद में राष्ट्र इस नाम से हुवा हैं राजा अशोक के कालखंड में राष्ट्रीय और आगे चलकर महा राष्ट्र पहचाने जाने वाला राष्ट्र ऐसाउल्लेख हयूएन त्सांग इस विदेशी मेहमान के लेखन में मिलता हैंदूसरी और 'वराहमिहिरा के ग्रंथ में(ई।स.505) और सत्याश्रय पुलकेशी के (ई।स.611) के शिलालेखों में महाराष्ट्र नाम का पहला उल्लेख मिलता हैं मार्कण्डेय पुराण में बताया गया हैं की दामरह नामा का शहर था। (ई.स. 330) के आस-पास राजा समुद्रगुप्त ने अपनी शिलालेखों में जिसे दक्षिणापथ कहा हैं वह शायद महाराष्ट्र को ही संबोधा गया हैं। महाराष्ट्र के वसहत के संदर्भा में दो राय हैं एक पौराणिक ,और द्यसरी ऐतिहासिक इसमेसे पहली पौराणिक राय यह हैं की 'ऋग्वेद में उल्लेखित 'दाराराज युद्ध पूर्व महाराष्ट्र वासहतअस्तित्व में थी ऐसा पौराणिक मत **डॉ.केतकर** ने अपनी ग्रंथ **प्राचीन महाराष्ट्र** मे व्यक्त कियाहा हैं। जिस समय महाराष्ट्र को दंडकारण्य कहा जाता था उस समय 'मगध,चालूक्ष।वकातक,राष्ट्रकूल इन सभी की सत्ता मध्य युग के कालखंड में थी। मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद सातवाहन ने ई.स. पूर्व 230-225 तक महाराष्ट्र को एक राज्य का दर्जा प्राप्त करावाया था। उसके बाद देवगिरि के यादवों द्वारा राज्य प्रस्थापित किया गया था।'[15]

134 वी शताब्दी में पहली बार यह राष्ट्र इसलामी सत्ता में आया था और अल्लाऊद्दीन खिलजी फिर मुहम्मद बिग तुग़लक इन्होने दख्खन का कुछ भाग काबिज कर लिया था। ई,स, 1347 में तुग़लक के बाद विजापुर के सुलतानों ने लगभग 150 वर्ष इस महाराष्ट्र पर शासन कीया था ।महाराष्ट्र का इतिहास 3 शताब्दी के बाद देखा जा सकत हैं । लेकिन महाराष्ट्र में 17 वी शताब्दी में मराठी समराज्य की शुरवात की थी शिवाजी महाराज ने। ऐसे इस महाराष्ट्र में लोकनाट्यो की परंपरा भी बहुत ही पुरातन,और वैभव शाली हैं।

'महाराष्ट्र में विविध प्रकार के लोकनाट्यप्रकार उपस्थित हैं। कूछ मनोरंजन के लिए तो कुछ विधियों के लिए। विधी, परंपरा, लोकरंजन,इन अलग-अलग उद्देशों के लिए कलाएँ विकसित हुवी हैं।

[14] भारतीय रंगभूमिची परंपरा – माया सरदेसाई

[15] प्राचीन महाराष्ट्र – डॉ.केतकर

विधी नाट्य में - देवि का गोंधळ, खंडोबा का जागरण, दंडार. संकिर्तन नाट्य में - लळीत, भारूड, भजन, किर्तन, दशावातार, लोकरंजन प्रधान लोकनाट्यों में - खडी गंमत, तमशा आध्यात्म से उद्बोधन प्रबोधन करने वाले लोकनाट्य - भारूड, भजन, किर्तन उपासओं के पथनाट्य में - पोतराज, वासुदेव ऐसे कलाप्रकार आते हैं। यह कलाप्रकार विधी, सण, उत्सव, महोत्सव इन प्रसंगों पर महाराष्ट्र के विविध प्रादेशों में प्रसंगांनुरूप प्रस्तुत किए जाते हैं। मनोरंजन, धार्मिक विधी,इन सभी का अवलोकन करने पर यह सामने आता हैं की, इन सभी में नाट्यतत्व उपास्थित हैं।'[16]

विधी नाट्य :-

अध्यात्म,धर्मभावना, श्रध्दा, संस्कार, परम्परा से निर्माण हुये यह विधी देवदेवताओं की पुजा अर्चा, विधी, संस्कार,इन सभी, त्यौहारों,उत्सव,लोकजीवन में संपन्न होते रहे हैं। विधी ये धार्मिक भावना से किये जाते हैं। इन विधियों में नाट्य है। नृत्य, संगीत द्वारा विधींयों में नाट्यमयता निर्माण होती हैं देवि का गोंधळ, खंडोबा का जागरण, दशावातार, यक्षगाण इत्यादी विधीउत्सव यह विधीनाट्य उदय का ही कारण है। किसी भी विधि का उद्देश देव-देवताओं की स्तुती, उपासना करना होता हैं। विधियों में मंत्रोपचार, आरती की जाती हैं। बजने वाली संबळ, तुणंतुणं, टाळ इनके द्वारा उत्पन्न हुवा संगीत, उपासकों द्वारा की गयी वेषभूषा भी विधि का महत्व बढ़ा देते है। . संगीत पर गोंधळी के द्वारा किया गया नृत्य भी अपने आप में एक अनोखा समा बांधता हैं। गाये जा रहे गितों पर अभिनय और संवादों के माध्यम से जो कुछ वातावरण निर्माण होता है वह हमे अलग दुनिया में ले जाता हैं। विधी में सामायित यह नाट्यअंग ध्यान में रखते उस विधि को नाट्यविधि यह संज्ञा दे सकते हैं।

रंजनप्रधान नाटय :-

मानवी शरीर और मनआलस दूर भागने के लिए, रंजनप्रधान लोकनाट्यों की प्रस्तुति की जाती हैं। या यह कहा जा सकता हैं की यहीं से उसकी ऊदभव की शुरुवात हो। मनोरंजन के साधनोंका अभाव यह भी एक कारण लोक मनोरंजनात्मक लोक नाट्यों की सुरुवात का एक माध्यम हो सका हैं। रंजनात्मक माध्यम से प्रबोधन यह परंपरा भी इसी की एक कड़ी हो सकती हैं। . तमाशा,खडी गंमत इन लोकनाट्यों के माध्यम से दर्शकों का मनोरंजन होता था। उसी के साथ प्रबोधनात्मकअंग भी इन लोकनाट्यों में समाइट राहतें थे।

[16] खड़ी गमत वैदर्भीय लोककला – मनोज उज्जेनकर

संकिर्तन नाट्य :-

लळीत,भारूड,भजन,किर्तन संप्रखंजेरी भजन, दशावतार, इन लोककलाप्रकारों को हम संकिर्तन नाट्य मे वर्गीकृत कर सकते हैं ।संतों के विचारधारा से, और आध्यात्मिक मार्ग से किर्तनकारऔर भारूडकार अपनी कला और प्रबोधन कराते हैं। मनोरंजनात्मक प्रबोधन यही **संकिर्तन नाट्य** का उद्देश माना जा सकता हैं।

पथनाट्य :-

रास्तों, नुक्कड़ों पर जाकर प्रस्तुत किया जाने वाला यह नाट्यप्रकारहैं जीसे पथनाट्य (नुक्कड़ नाटक)यह परिभाषा दी गयी हैं ।उसी के साथ रोजगार, कमाई के साधन के लिए कूछ कलाओं का उपयोग किया जाता हैं,उसमें मदारी, डोंबारी, नंदी बैल का खेल, तोते का खेल दिखाकर भविष्य बताया जाता हैं। जादु के खेल, भालू का खेल यह खेल आते हैं। इन सभी खेलों को हम पथनाट्य में वर्गीकृत कर सकते हैं। .

खेलों में नाट्य :-

प्राचीन भारत में अनेक खेल होते थे जिन्हे घर में बैठकर या किसी मैदान में जाकर खेला जाता था। पाणिनी, वास्तायन, दंडी इनकी गग्रन्थों में इन का उल्लेख मिलता हैं। .

कवडीयों से या ताश, या शतरंज के माध्यम से जो खेल खेले जाते थे या जाते हैं वह सभी हम इस श्रुंखला में डाल सकते हैं ।.शुद्रके ‘ मृच्छकटीकम्’ नाटक में जो बैलगाडी की प्राचीनता ध्यान में लेते हूवें.महाराष्ट्र का गिल्ली दँडा वजो आज बजी प्रचलित हैं। महाभारत में द्रोण द्वारा कुवें से गिल्ली निकलने का वर्णन हैं। यह खेल की प्राचिंनता दर्शाती हैं।

लोकनाट्य शैली :-

लोकनाट्य यह दृक -श्राव्य कलाप्रकार होकर इस में साधी बोली, कम-से कम सजावट, सहज अभिनय, सर्वसमावेशक लोकसंगीत ऐसे घटक दिखायी पड़ते है। जनसाधारण समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला यह लोकनाट्य मनोरंजन एवं प्रबोधन के लिए ग्रामीण कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता हैं।

लोकजीवन से निर्माण होने के कारण लोकधर्मी शैली में लोकनाट्ययों का समावेश किया जाता हैं। महाराष्ट्र में आज भी बहुत लोकनृत्य,लोकसंगीत और लोकनाट्य अस्तित्व में हैं।

नाटक और राजनीति यह विषय मराठी मनुष्य के मनपसंद विषय हैं जिस पर वह कई घंटों तक बात कर सकता हैं। महाराष्ट्र के अनेक प्रान्तों में कइ प्रकार के लोकनाट्य देखे जा सकते हैं। फिर भी महाराष्ट्र पहचाना जाता हैं लावणी के लिए! तमाशा इस लोकनाट्य का नृत्य, जो लावणी के नाम से जाना जाता हैं, जो समूचे भारत में सराहा गया हैं। तमाशा के साथ ही अनेक लोकनाट्यों की एक समृद्ध परम्परा महाराष्ट्र मे देखने मिलती हैं। गोंधड़, भारूड,दंडार,दशावतार,ऐसे अनेक लोकनाट्य यहा देखे जा सकते हैं। महाराष्ट्र की इसी परम्परा पर हम चर्चा करने वाले हैं।

गोंधळ :-

मोर्या गणपति रे गणराया।

किती विनवू तुला महाराजा ॥

तेत्तीस कोटी देवदेवता।

सर्वाण आधी गणनायका ॥

दैत्य मारून केलिस दया।

लावले पळवूनीधाही दिशा ॥

दुष्टाला देशी तू सजा।

किती विनू तुला महाराजा ॥

गोंधळ, यह देवी के उपासना का लौकिक स्तरका नाट्यात्मक विधि हैं। महाराष्ट्र का माहुर यह गाँव गोंधड़ी अपना मूलस्थान मानते हैं। और महाराष्ट्र मे पूजनीय रेणुका माता और तुलजाभवानी के उपासक गोंधली होते हैं।

'गोंधल परंपरा कब उत्पन्न हुई ये तो कहना संभव नहीं हैं पर बताया जाता हैं की ई.स. 1000 पूर्व तुलजाभावनी देवी की प्राचीनता देखि जाती हैं। और रेणुका माता तो उसके भी पहले की हैं ऐसा

लोकनाट्याची परंपरा इस ग्रंथ में **वी. जोशी** लिखते हैं। गण दल (गण अधिक दल) इस शब्द से उत्पन हुवा शब्द हैं।[17] ऐसा **डॉ.रा.चीं. ढेरे** अपनी किताब **लोक संसकृतिचे उपासक** किताब में लिखते हैं। सन1240 में वारंगल का राजा गणपती काकर्तीय के एक अधिकारी ने 'नृत्य रत्नावली' जो ग्रंथ लिखा हैं, उसमे जो जानकारी मिलती हैं वह महत्वपूर्ण हैं। कल्याणकारी राजा सोमेश्वर (तृतीय) इन्होंने अपने कल्पना नामक राजधानी में भूतमातृमहोत्सव हेतु गोंधली नमक नृत्य करवाया था। इस नृत्य में कुछ सुधारणा कर सोमेश्वर ने महाराष्ट्र में चित्रा गोंधल प्रकार का आरंभ किया था।

डॉ.रा.चीं.ढेरे यह अनुमान लगाते हैं की, शायद यही नृत्य गोंधळ का प्राचीन स्वरूप रहा होंगा। वह अपनी किताब **लोक संस्कृति के उपासक** में लिखे हैं की भूतमातृमहोत्सव यह एक अर्धलौकिक उत्सव हैं पुरानों मे इस उत्सव के कई वर्णन मिलते हैं। वैशाखकृष्ण प्रतिपदे की अमावशतक दैवीआपत्ती टालने के लिए और सुंदर संतति प्रपट करने के लिए यह उत्सव किया जाता था। यह उत्सव करनेसे भूतप्रेत,चुड़ैल,राक्षस इन सभी दुराचारियों से मुक्ति मिलती हैं,ऐसा प्रचालन तब था। चार दिन भूतमाता का भक्तिपूर्वक के बाद पंचवे दिन जो अमावशा का होता था उसी रात यात्रा से सांगता होती थी पाच दिन चलाने वाले इस उत्सव मे रोज रात को नाटक या ललित का मंचन होता था। अनेक प्रयोग प्रस्तुत किए जाते थे। ऐसा स्कंदपुराण के प्रभाग खंड में दिया गया हैं।भविषा पुराणनुसार भूत माता और उसके सहचर यह पार्वती से उत्पन हुवे हैं। जेष्ठ मास में यह उत्सव मनाने का रिवाज था। हसते-खेलते, अशोभनीय उच्चारण, अशिष्ट हाव-भाव का प्रदर्शन किया जाता था और धूल,मिट्टी, कीचड़ में नाहन और कई अनेक प्रकार इस उत्सव में चलते थे। उल्लेखित ग्रंथ के अनुसार सतवी शताब्दी से तेरवी शताब्दी तकयह उत्सव मनाया जाता था।

बहुतांचा गोंधळी। घड़ो निंदा सभस्य रळी

मग अभिमानांचा द्वांकी। पड़ती एकमेका ॥

महाराष्ट्र में यह गोंधल किसी भी शुभ अवसर पर करवाया जाता हैं। देव-देवताओंकों बुलाकर घरमें होराहे शुभ कार्य पर आशीर्वाद मांगा जाता हैं। तथा भेट वस्तु दान रुपों में दिया जाता हैं। पहले गोंधली द्वारा (गोंधल प्रस्तुत करने वाला कलाकार) घटस्थापना की जाती हैं। पाँच गन्ने वुपर से एक साथ बांध कर उन्हे नीचेसे फैलाकर खड़ा कर दिया जाता हैं। वह एक जुगगी के समान दिखने लगते हैं। उसमें एक

[17] लोकसंस्कृति चे उपासक – रा.चीं.ढेरे

नारंगी रंग का कपड़ा बिछा कर गेंहू,ज्वारी,जैसे अनाज रखा जाता हैं। जिसे रास कहते हैं। इस विधि को गाड़ी भरना कहते हैं। फिर चौरंग पर उसपर एक पानी से भरा लोटा रखा जाता हैं, उसकी चारों ओर बगवेली की पट्टीय राखी जाती हैं और नारियल बीचोबीच रखा जाता हैं। भगवान की टंक सामने राखी जाती हैं। सुपारी, खोबरा,धूप अगरबत्ती लगाई जाती हैं और जिस आजमान के घर आज यह गोंधल विधि होना हैं, उसके द्वारा इस घट की पुजा की जाती हैं इस पुजा में और भी कई प्रकार के पदार्थ रखे जेते हैं।

उसके बाद संबल जो इस विधि का मुख्य वाद्य होतहाइन उसकी पुजा की जाती हैं। उसी के साथ तुंतुना यह एक सुर वाद्य हैं जो भी महत्वपूर्ण होता हैं। इनकी एक जुगालबंदी की जाती हैं जिससे वातावरण निर्माण और दर्शकोंके आगमन के लिए मदत होती हैं। और दर्शकों के आने के साथ ही गोंधल का प्रस्तुति कारण शुरू हो जाता हैं। सबसे पहले गण गया जाता हैं। गणपति की आराधना वाला गण गाते समय हो रहे प्रस्तुति के लिए भगवान से आशीष मांगा जाता हैं। जीस किस प्रकर का होता हैं। इसका उदाहरण सुरुवात में दिया गया हैं। इस गण के समाप्ती पर सभी देवताओं को बुलाया जाता हैं। इस आव्हान से उन्हे मंगल शिष देने आमंत्रित किया जाता हैं।

सती समिनदरा गोंधला ये।

नवलखा तारंगना गोंधला ये।

इस प्रकार सभी दे-देवताओंका आमंत्रित करने पर वह प्रकट हो गये ऐसा समझकर उन्हे नमन करने के लिए नमन गीत गया जाता हैं। यह नमन गीत कितने भी हो सकते हैं। इनपर कोई पाबंदी नहीं होती। इस गोंधल में भी पूर्व और उत्तर रंग होते हैं। पूर्वरंग में गण ,गवालन,आवाहना,और नमन होता हैं। तो उत्तर रंग में आख्यान गायन,और प्रस्तुति होती हैं। आखिर में आरती से इस गोंधल की सांगता होती हैं।

उतर रंग ही नाट्यपूर्ण होता हैं, लीला गायन और लीला दर्शनयह मुख्य अंग होते हैं। उत्तररंग में आख्यान प्रस्तुति में विनोद निर्मिति होती हैं कभी कभी कलाकार अपना स्वतंत्र: का प्रयोग कर मनोरंजन्न भी कराते हैं। आखि में आरती से समाप्ती होती हैं। सवादात्मक और गयानात्मक यहाविधि अपने आप में एक बहुत नाट्यात्मक प्रकार से प्रस्तुत किया जाता हैं। एक अलग दुनियाँ मे लेजाने का जो कार्य इस नाट्यात्मक प्रकार के माध्यम से किया जाता हैं। आंतोनिन आर्तो जिस रंगमंचा की कामना कर रहे थे,या विचार करत थे। शायद वह यही गोंधल होता हैं।

भारुड :-

भारुड यह एक रचना प्रकार हैं। पर वह रूपक के माध्यम से प्रस्तुत कर सुनाया जाता हैं। भारुड यह देखा जाएँ तो संत संप्रदाय का मनपसंद रचना प्रकार हैं। समर्थ रामदास से लेकर संत तुकाराम इन सभी संत संप्रदाय भारुड रचनायेँ लिखी हैं। एकनाथ महाराज तो इनसब मे अग्रगण्य हैं। उनहों ने समाज प्रबोधन, उद्बोधन, के लिए लिए कई भारुड लिखे। और उनके मध्य से जनसाधारण में भक्तिभाव का प्रसार, और प्रचार किया जाता है। विविध पात्र योजना कर उनमें रंगत लाई जाती हैं। संतों ने समाज प्रबोधन का कार्य इस भारुड के माध्यम से किया हैं,और मनोरंजन के साथ ही प्रबोधन का सशक्त माध्यम का निर्माण भी किया था।

भारुड के प्रकार :- जन साधारण जीवन में जो ग्रामीण भूमिकाए करने में कलाकारों के मुख से उपदेशात्मक काव्य निकलेगा वह भारुड का रूप लेता हैं। इसके साथ में ग्राम रचना तो समझ में आती ही हैं,उसिके साथ ग्रामिन जीवन की सरलता एवं अभिव्यक्ति पध्दति भी समज ने में आसानी होती हैं अपनी आंचलीय लय ताल को देखते हूवें भरूद की रचना की जाती हैं

१) भजनी भारुड:-

भजनी भारुड में भारुड में यह भारूद केवल गाये जाते हैं। वह नाट्य रूप में प्रस्तुत नहीं किए जाते। यह भारूद केवल नाद के माध्यम से ही गाये जाते हैं, और उनका कोई स्पष्टीकरण भी नहीं किया जाता हैं। परंपरागत ताल, लय तो इसमें होती हैं साथ ही में लोकगायकी का भी उपयोग किया जाता हैं। महाराष्ट्र में लोकगायकी के भी अनेक प्रकार दिखाई देते हैं गोंधली,वार्घ,वसुदेव,भराड़ी, पांगिल। यह इनमें प्रमुख हैं। इन सभी ने अपनी स्वतं:त्र गायन पद्धती विकसित की हैं।

२) सोंगी भारूद :-

जैसा की नाम सेही पता चलता हैं की सोंगी भारुड में भारूद प्रस्तुति के साथ सोंग (कोई विशेष रूप)भी लिया जाता हैं। किसी पात्र की वेषभूषा /रंगभूषा करके इस रूप के साथ भारुड प्रस्तुत किया जाता हैं। साथ ही नृत्य-नाट्य के माध्यम से का प्रयोग प्रस्तुति में किया जाता हैं। वसुदेव,गोंधल,वाघ्य,ऐसे कई प्रकार के सोंग लिए जाते हैं।

वेषभूषा एवं रंगभूषा :-

हमने ऊपर कहा हैं की सोंगी भारुड मेंअनेक प्राक के सोंग प्रस्तुत किए जाते हैं उस के लिए मुख्य भारूड्कार यह अलग अलग वेषभूषा करता हैं,और पात्र की सहायता से भारुड प्रस्तुत करता हैं। इसके लिए वह वेषभूषा औ रंग भूषा का प्रयोग करता हैं। गएभवति महिला,अंधा आदमी,वसूड़े, गोंधली,ऐसे कई रूप लेकर वह मनोरंजन के साथ कथानक के परिप्रेक्ष्य में वेषभूषा का प्रयोग कर प्रबोधन भी करत हैं, और जनसाधारण को भक्ति का महत्व सिखाता हैं । एकनाथ महाराज ने समाज में फैली अंधश्रद्धा,एवमेसी कई बुराइयोंको दूर करने के लिए इस भरूद का प्रयोग बहुत प्रभावी माध्यम से किया हैं

योगदान :-

संत परंपरा में जिस भरूद ने भक्ति संप्रदाय को साधारण जनसमूह के प्रबोधन के लिए यह भारुड प्रकार प्रयोग में लाया,वीएच आज भी अपना कम पूरी तरहा से और निष्ठा के साथ पूरा कर रहा हैं। नैतिक मूल्योंकों,जनजीवन में बनाएँ रखने का काम,और मानव धर्म को हमेशा याद रखने का काम यह भरूद कर रहा हैं समसमायीक स्थिति में हौवे बदलाओंकों स्विकार करता हौवा यह भारुड अपनी मुख्य उद्देश से यह भारुड कभी दूर जाता न दिखा हैं नही दिखेगा।

दशावतर:-

दशावतर यह लोकनाट्य विशेष रूप से कोकण,और गोवा के प्रान्त में चलने वाला लोकनाट्य हैं । कहा जाता हैं की कर्नाटक की यक्षगाण से यह लोकनाट्य प्रभावित हैं। या उसी से उत्पन्न हुआ है। अगर इसे सत्य भी मन लिया जाता है जाता हैं, तो भी महाराष्ट्र के दशावतार नाट्य ई.स.7 वी शताब्दी में विष्णुर के मल्लाशा इस प्रथा क प्रारम्भ किया

कोकण के ग्राम देवताओं के उत्सव पर यह दशवतारी खेल खेले जाते हैं। साधारण कार्तिक पुर्णिमा के बाद से लेकर चैत्र महीने तक इनकी प्रस्तुति की जाती हैं देवली जो कोकण और गोवा की एक जमाती हैं उनके द्वारा यह खेल प्रस्तुत किए जाते हैं । इसीके साथ गौरव और लिंगायत समाज के लोग भी दशावतार का प्रस्तुति कारण कराते हैं।यह एक परम्परा गत चलता आरहा लोकनाट्य हैं।

परमात्मा के अवतार याने भगवान ने लिए रूप (सोंग) हैं। भगवान ने कुछ विशेष उद्देश के लिए यह सोंग लिए हैं उसी अर्थ क उल्लेख संत साहित्य मे अनेक बार आता हैं।

'धरीयेले सोंग जेने अवघे पांडुरंग ।

ते हे ब्रह्म विटेवरी । उभे चंद्र भागेतीरी॥ '[18] *(डॉ.रा.चीं. ढेरे)*

पात्र :-

इस लोकनाट्य में विदूषक और सूत्रधार यह दो पात्र महत्वपूरण होते हैं। जो संपूरण खेल में पूरे समय उपस्थित होते हैं। और कथानक को आगे ले जाने में सहाय्यता कराते हैं। सूत्रधार जरीदारी धोती पहंनता हैं। कंधे पर रेशमी गमछा होतहाइन। यह सूत्रधार सम्पूर्ण प्रस्तुति में कभी भी रंगमंचपर प्रवेशा कर सकता हैं। सरस्वती की आराधना की आराधना करता हैं और उसे मंचन की सफलता के लिए आशीष मांगता हैं। यह सूत्रधार बहुत अच्छा गायक और नर्तक भी होता हैं। उसिके साथ आवश्यक व्हा रूप धारण कर अभिनय भी करता हैं। यह अच्छा अभिनेता भी होता हैं। आवश्यक पात्रों के अभिनय से वातावरण निर्मिति करने क गुण उसमे होता हैं।

विदूषक :-

यह नाम से ही पहचाने जाने वाला पात्र है संस्कृत नाटक की तरहा यहा भी विनोद निर्मिति करने वाला और जनसाधारण का मनोरंजन करने वाला होता हैं। अपनी आंगिक चेष्टाओं से और शब्द माध्यम से वह विनोद उतप्नकर वातावरण का निर्माण करता हैं। दशावतर में अनेक प्रकार के सोंग प्रस्तुत किए जाते हैं। नारद से लेकर महादेव तक आने वाले सभी रूपों में विदूषक उपस्थित रहता हैं और सूत्रधार से इन रूपों के बारे में पुछता हैं और विनोद निर्मिति करता हैं।

रंगमंच:-

जनसमूह के सहाय्यतासे यह मंच उभरा जाता हैं। गाँव के सभी लोग आकार इस मंच को बनाने में सहाय्यता करते हैं। यहारंगमंच बनाने क काम भालेही विधि पूर्वक किया जाता हैं पर इस विधि में कोई भी देवतांका उल्लेख या स्थापना नहीं की जाती हैं।

[18] लोकसंस्कृति चे उपासक – रा.चीं.ढेरे

अभिनय :-

भारत मुनि द्वारा जिन चार अभिनयोंकी रचना की गई हैं यह चरो अभिनय इस लोक नाट्य में देखने मिलती हैं और साथ ही लोक रंगमच से जुड़े अभिनय शैली का भी प्रयोग किया जाता हैं। दशावतर में रंगभूषा और वेशभूषा का महत्व होता हैं। रंगमंचसे वेषभूषा के सभी आवशक वह साहित्य बनाने में गवन वालों क योगदान होता हैं।यह वेषभूषा बनाने की एक पढ़ती इन कोकण और गोवा के लोगों द्वारा विकसित की गई हैं। और यह सब कार्य लोग एक उत्सव की तरहा मानते हैं। देखा जाए तो कोकण का दशवतार यह एक प्रकार से सामाजिक सद्भाव इस लोकक़ला के माध्यम से उत्पन्न होता हैं यह इस कला का सामाजिक योगदान ही हैं।

निष्कर्ष

विविधता में एकता की परिभाषा को अगर समझना है तो भारत की इन सभी लोकनाट्यों की परंपरा को देखाना होगा और उन्हे समझ ने प्रयत्न भी करना होगा। देश के सभी प्रांत,अंचलों में यह लोक नाट्य खेले जाते है और इनकी माध्यम से जनजागृति भी की जाती है। इन सभी लोकनाट्यों के माध्यम से जो सामाजिक सद्भाव और एकता का प्रदर्शन होता है उसी इस देश की परंपरा और संस्कृति प्रदर्शित होती है ऐसे ही समूचे भारत के बाद अब हम अगले अध्याय में महाराष्ट्र की लोक नाट्यों की परंपरका अध्ययन करने वाले है जो हमारे विषय तक पहुँचने में हमारी मदत करेगा।

उपसंहार :

भारतीय लोकनटयों की परम्परा में हमने देखा की समूचे भारत में यह लोकनाट्य अपनी क्षेत्रीयता को उजागक करते हुये अपनी परंपरा संभाले है। लोकनाट्य हमें ये सोचने में बाध्य कर देता है की,नाट्य वही है जहां सहजता है। बड़े बड़े सेट,लाईट्स,रंगमंच,लाखो रुपयों के खर्च से बने महेंगे नाट्यगृह, और आलीशान प्रेक्षागुहों में जहा नाट्य मर रहा है वही हमारे जसधारण ने अपनी क्षमताओं से उसी नाट्य को एक नए मुकाम पर पहुंचा दिया है। यही कारण है की समूचे विश्व में आज इन की आवश्यकता समझी जा रही है उसे जतन करने का प्रयास भी किया जा राहा है। खड़ी गंमत यह लोगों में विकसित होकर उनके जीवन का मार्ग बन रहा है।

बिना किसी दिखावे के अपनी परंपरा का जतन एवं जनसाधारण के हित में उपयोगी कार्य यह लोकनाट्यों का उद्देश्य रहा है। लोक नाट्य परंपरा कि शुरुवात कोई निश्चित नहीं बता सकता है। और उसे स्पष्ट करने की आवश्यकता भी नहीं है। विदर्भ का खड़ी गंमत यह इस प्रांत के लोकजीवन मे परिवर्तन और प्रबोधन करने वाला लोक नाट्य है। यह खड़ी गंमत अपनी कथानकों के और प्रस्तुति के माध्यम से जनमानस का मनोरंजन कर रहा है और साथ ही उसे शिक्षित भी कर रहा है। मोतिराम नागदीवे जैसे किसी निराश व्यक्ति को जीने कि राह दिखा सकता है तो बेरोजगारी से परेशान युवाओं को जीने का साधन भी उपलब्ध करा सकता है।यह विशेषताएँ इस खड़ी गंमत कि है जिन पर आज तक प्रकाश नहीं डाला गया था।

इस शोध के माध्यम से इस विषय पर कुछ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ है। अपनी भाषा, बोली,और साथ ही सहजता जो इस लोकनाट्य ने संभाल कर रखी है, वह मानवी जीवन कि एक बहुत बड़ी सीख देने वाला तत्वज्ञान है।

simplicity is the best policy...

यह मंत्र अपनी जिवन में उतारकर संपूर्ण जीवन किसी कला का जतन यह वास्तव में एक संवेदनशील मनुष्य का लक्षण है जो गाँव में हमें आज भी हर व्यक्ति में देखने मिल जाता है। यह लोक नाट्य जिस प्रकार कुछ साधारण तत्वों का उपयोग करता है और हमारी आत्मा में सीधा प्रवेश कर जाता है और परमानंद कि अनुभूति कराता है। इस के लिए वह कूछ तत्व अपनाता है जो नीचे प्रस्तुत किए गए है।

भाषा :- यह स्पष्ट हैं की लोकनाट्य प्रादेशिकता को प्रखरता से स्पष्ट करता हैं, उस में भाषा भी एक अंग हैं लोकनाट्य की भाषा प्रादेशिक होती हैं,और उसमें भी वह प्रमाण भाषा को नकारते हुवे अपनी मातृ भाषा का प्रयोग करती हैं। जो सरल एवं सहज जनसमान्य को समझने वाली एवं बोधात्मक होती हैं। ये लोककलाकार उसी भाषा का प्रयोग प्रस्तुति में करते हैं जो उनके द्वारा जीवन मे प्रयोग में लाये जाते हैं।

संवाद :- लोकनाट्यों में संवाद सरल एवं छोटे होते हैं। आवश्यक नैतिकता संभाले भी होते हैं। अपनी बोली को ही संवादों के लिए प्रयोग में लाया जाता हैं। प्रश्न-उत्तर के रूप में अपनी बोली में यह संवाद ज्यादा होते हैं।

कथानक :- लोकनाट्यों के कथानक ज़्यादातर पौराणिक,एतिहासिक या स्थानिक कथाओं पर आधारित होते हैं, उन्हे सामान्य स्तर पर लाकर मंचित किया जाता हैं। महाभारत या रामायण के किसी भी कथानक को ये ग्रामीण कलाकार उन्हे जिस प्रकार संभव हो वैसा प्रस्तुत करते हैं। संवादों को अपनी भाषा देते हैं और दर्शकों का खासा ध्यान रखते है।

कोई भी बड़े विचारों या तत्वज्ञान को वह नहीं अपनाती पर बड़े विचार, या जीवन ज्ञान वह सरल तरीके से और सहज प्रस्तुति से अपनाती है और उसी सहजता से संप्रेषित भी करती है। विदर्भ की लोक कलाएं यह एक स्वतंत्र संशोधन का विषय हैं। लोक जीवन के प्रतिबिंब इस मिट्टी की लोककलाओं मे देखे जा सकते है। कोई भी लोक कला उस लोकसंस्कृति की प्रचारक और प्रसारक होती है। देखा जाये तो यह लोक कलायें क्षेत्रीय जीवन की पाठशाला होती है। ग्रामीण प्रदेश की मिठास, प्रेम, संबंधो की चाह यहा लोक कलाओं की विशेषता कही जानी चाहिए। बदलता वर्तमान समय जिस प्रकार सभी क्षेत्रों को प्रभावित कर रहा है, उसी प्रकार वह लोककलाओं के क्षेत्र में भी अपना सिर ऊंचा करना चाह रही हैं। घर बैठे गरिब से गरीब व्यक्ति तक पहुंचे इस तकनीकी समाज ने हर किसी का जीने का ढंग बदल दिया हैं। ग्राम संस्कृति का दर्शन देनी वालि यह लोक कलाएं आज भी अपनि विशेषताएँ संभाले है,और हमेशा संभाले रहेगी इस में कोई संदेह नहीं हैं।

परिशिष्ठ

1) रंगभूषा करते 'नाच्या

2) 'गण' प्रस्तुत करती मंडली

3)खड़ी गंमत का पात्र 'मावशी'

4) 'शाहिर' मुख्य पात्र

ढोलकथा

नाच्या

खड़ी गंमत कि प्रस्तुति
महाराष्ट्र शासन
सांस्कृतिक कार्य संचालनालय, मुंबई
आयोजित

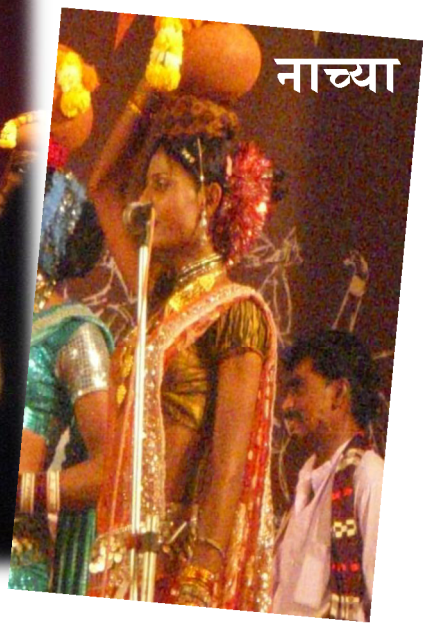
नाच्या

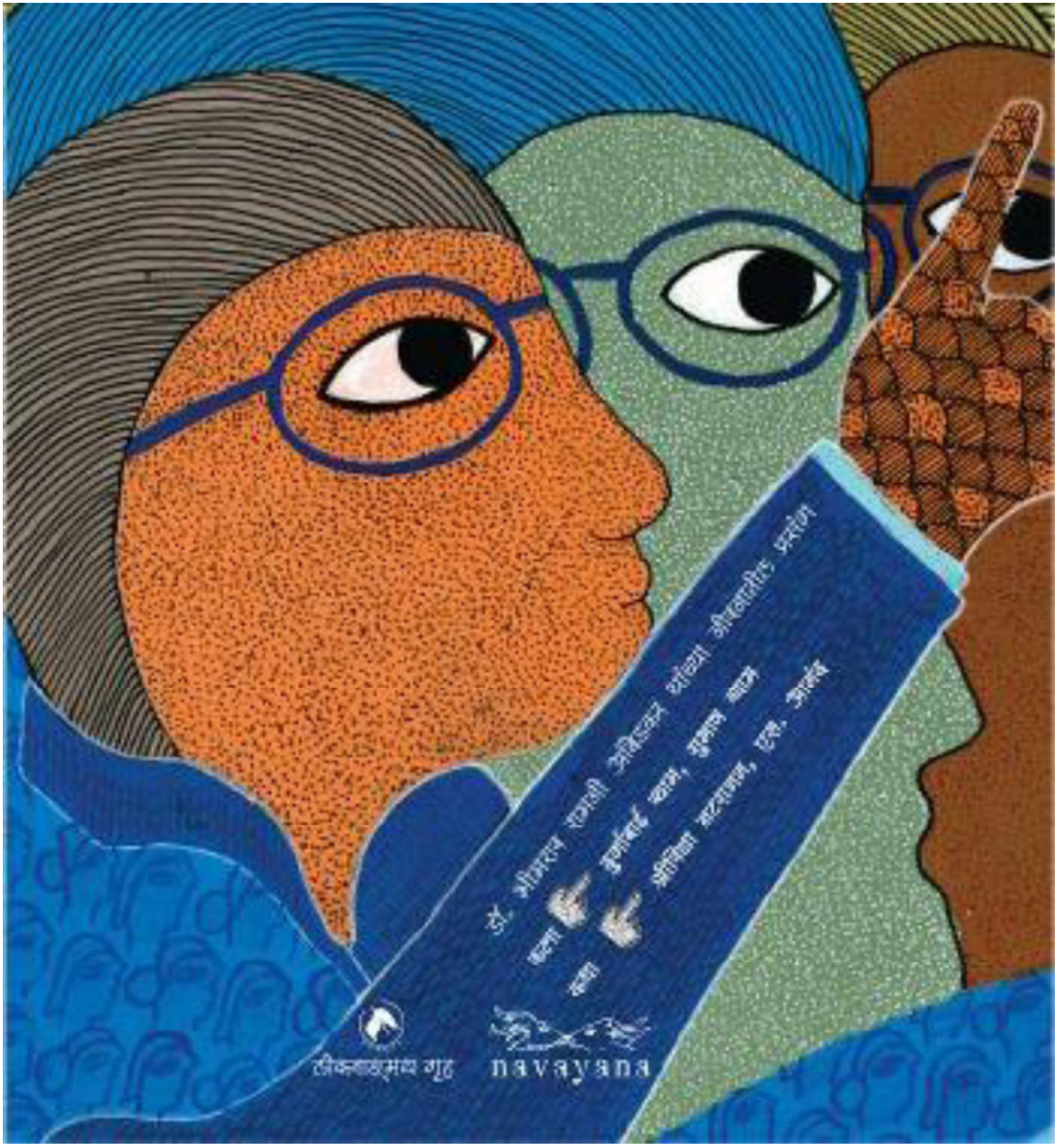

जिनके कारण यह संभव हुआ उन बाबा साहब आंबेडकर को....

संदर्भ सूची

आधार ग्रंथ

1. शुक्ल, बाबूलाल शास्त्री, 'हिन्दी नाट्यशास्त्र', चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी, 2009
2. त्रिपाठी, राधावल्लभ, 'संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008
3. धनंजय, 'दशरूपक', चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी

अन्य सहायक संदर्भ

1) बोरकर, हरिशचन्द्र,विदर्भ की लोक विधा, साकोली : तारा प्रकाशन, (2009)
2) कानेड माणिक, जागतिक रंगभूमी 1 : पूर्वरंग. पुणे: सहन प्रकाशन, (2007).
3) भारती ओमप्रकाश,बिहार के पारमपरिक नाट्य. इलाहाबाद: उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, (2007).
4) देसाई बापुराव लोकसाहित्य शास्त्र. कानपुर: विकास प्रकाशन. (2004).
5) ढेरे रामचन्द्र लोक दैवतांचे विश्व. पुणे: पद्यगंगा प्रकाशन. (1996).
6) सरदेसाई माया,भारतीय रंगभूमिची परंपरा पुणे: स्नेहवर्धन प्रकाशन. (1996).
7) शर्मा रामविलस.भारतीय साहित्य की भूमिका. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, (1996).
8) उपाध्याय कृष्णदेव लोकसाहित्य की भूमिका
9) लांजे हीरामन. .खड़ी गंमत नागपुर : मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र नागपुर.
10) तिवारी हरीश कुमार,मंच प्रदर्शन में कलाकार एवं श्रोता.नई दिल्ली:संजय प्रकाशन,(2005).
11) राधाकृष्णन सर्वपल्ली,आज का भारतीय साहित्य. नई दिल्ली : शाहित्य अकादमी. (2007).
12) मधुर शिवकुमार,मध्यप्रदेश का लोकनाट्य माचा भोपाल: म.प्र.आदिवासी लोककला परिषदा(2007).
13) माथुर जगदीशचंद्र(2000). परम्पराशील नाट्य. पटना: बिहार राष्ट्र भाषा परिषद.2000.
14) उज्जेनकर मनोज,खड़ी गमत वैदर्भीय लोक कला
15) ओजा,दशरथ ,हिन्दी नाटक उद्भव :और विकास राजपाल अँड संस प्रकाशन,2003
16) गार्गी ,बलवंत :फोक थियेटर ऑफ इंडिया,युनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन ,1966

17) दुबे, श्यामसुन्दर :लोक परम्परा, पहचान एवं प्रवाह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड , जगतपुरी दिल्ली , 2003

18) भारती , ओमप्रकाश :'बिहार के पारंपरिक नाट्य' ,उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद,2007,

19) शर्मा, हरद्वारी लाल, 'लोक वार्ता विज्ञान', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990

20) दास,श्रीकृष्ण, 'हमारी नाट्य परंपरा, साहित्यकार संसद, प्रयाग

आधार ग्रंथ :

1) परदेशी भाऊ साहब. (1998). भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के मानदंड.कानपुर. चंन्द्रलोक प्रकाशन.

2) क्षीरसागर के.(1965).टीका विवेक. मुंबई. पॉप्युलर प्रकाशन.

3) चौमासा अंक 36